



पढ़ने की दहलीज़ पर

पढ़ने से संबंधित लेखों का संकलन

अक्षर पढ़ पाना, अक्षर जोड़कर शब्द पढ़ पाना ही काफ़ी नहीं है। पठन-पाठन वह “खिड़की” है जिसमें से संसार दिखता है, यह शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। जब बच्चा तेज़ी से और धाराप्रवाह पढ़ सकेगा केवल तभी यह उपकरण इस्तेमाल के लिए तैयार होगा।

– वसीली सुखोम्लीन्स्की



पढ़ने की दहलीज़ पर

(पढ़ने से संबंधित लेखों का संकलन)

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

3267 – पढ़ने की दहलीज़ पर

पढ़ने से संबंधित लेखों का संकलन

ISBN 978-81-7450-837-9

प्रथम संस्करण

जुलाई 2008 आषाढ़ 1930

पुनर्मुद्रण

मई 2014 वैशाख 1936

जून 2021 आषाढ़ 1943

जुलाई 2022 श्रावण 1944

PD 2T RSP

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, 2008

₹ 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम.
पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली
110 016 द्वारा प्रकाशन प्रभाग में प्रकाशित
तथा रास टेक्नोप्रिंट, ए-93, सेक्टर-65, नोएडा
201 301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिना इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस

श्री अरविंद मार्ग

नयी दिल्ली 110 016

फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड

हेली एक्सटेशन, होस्टेकेरे

बनाशंकरी III स्टेज

बेंगलुरु 560 085

फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन

डाकघर नवजीवन

अहमदाबाद 380 014

फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस

निकट: धनकल बस स्टॉप पनितरी

कोलकाता 700 114

फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स

मालीगांव

गुवाहाटी 781 021

फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

- अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : अनूप कुमार राजपूत
मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकरा
मुख्य व्यापार प्रबंधक : विपिन दिवान
मुख्य संपादक (प्रभारी) : बिज्ञान सुतार
संपादक : नरेश यादव
उत्पादन सहायक : ओम प्रकाश

आवरण

ब्लू फिश

आमुख

‘पढ़ना’ सीखने का शुरुआती दौर बच्चों और प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों दोनों के लिए कितना महत्वपूर्ण है, इस ओर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामतः समझ कर पढ़ने के कौशल का विकास कक्षा तीन-चार के बच्चों में भी नहीं हो पाता। इसका एक बहुत बड़ा कारण जहाँ इस ओर नीति निर्धारकों और शिक्षाविदों का उदासीन रवैया हो सकता है, दूसरी ओर ‘पढ़ने की समझ’ को लेकर शिक्षकों की अपनी एक पुख्ता समझ का न बन पाना भी है। कारण और कारण के धारक चाहे कोई भी हों उसका असर बच्चे पर ही पड़ता है। पढ़ना सीखने-सिखाने की प्रगतिशील विधियों की ओर शिक्षकों और शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित करने और बच्चों को एक स्थायी पाठक बनाने के उद्देश्य से मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सर्वशिक्षा अभियान के सहयोग से एन.सी.ई.आर.टी. में 2007 में रीडिंग डेवलपमेंट सैल की स्थापना की गई। रीडिंग डेवलपमेंट सैल की मुख्य गतिविधियों में से एक है ‘पढ़ने’ से संबंधित शोधपरक लेखों पर चर्चा और उनका संकलन। प्रस्तुत संकलन के लेखों पर विचार-विमर्श हो, कक्षा एक और दो के बच्चों को ध्यान में रखकर पढ़ने को लेकर मनन चिंतन हो, पढ़ने की मौजूदा स्थिति में सुधार लाने का एक माहौल बने तो इस संकलन की सार्थकता होगी। प्रारंभिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण का तात्पर्य पाठ्यपुस्तक के पाठों के वाचन और भाषा पाठ्यक्रम पूरा करने से कहीं ज़्यादा व्यापक है, इन लेखों को इस संदर्भ में समझा जाए। पढ़ने के अनंत अवसर देने के लिए केवल पाठ्यपुस्तक नहीं तो और क्या हो? कक्षा में पढ़ने के अवसर देने का दायित्व केवल कक्षा एक और दो के शिक्षकों का ही नहीं, हम सबका है। हम सब कहीं न कहीं भाषा, बाल साहित्य, प्राथमिक विद्यालय के बच्चों और कक्षागत स्थितियों से जुड़े हैं। इस दायित्व को निभाने के लिए पढ़ने को लेकर अपनी ‘सोच एवं समझ’ को आंदोलित करने और कुछ प्रभावशाली सार्थक कदम उठाने में सहयोगी होगा यह संकलन ‘पढ़ने की दहलीज़ पर’। हम ये न भूलें कि कक्षा एक और दो के बच्चे ही नहीं, हम सभी ‘पढ़ने की समझ’ को लेकर अभी पढ़ने की दहलीज़ पर ही हैं।

हम प्रोफेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, परिषद् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिन्होंने इस संकलन के विभिन्न चरणों में हमारा मार्गदर्शन किया।

परिषद् उन समस्त रचनाकारों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है जिन्होंने इस संकलन में अपने लेख सम्मिलित करने की अनुमति दी।

विभिन्न लेखों के संकलन में सहयोग के लिए हम रीडिंग डेवलपमेंट सैल के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

परिषद् लता पाण्डे, रीडर, डी.ई.ई. जिन्होंने इस पुस्तक का संपादन किया इसके लिए धन्यवाद व कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

इस संकलन के विकास में सहयोग के लिए सीमा मेहमी और नरगिस इस्लाम डी.टी.पी. ऑपरेटर; राधा, कॉपी एडीटर के हम आभारी हैं। प्रकाशन विभाग द्वारा सहयोग दिए जाने के लिए आभार व्यक्त करते हैं।

मंजुला माथुर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
रीडिंग डेवलपमेंट सैल
रा.शै.अ.प्र.प.

कुछ ज़रूरी बातें

हर बच्चे में नैसर्गिक रूप से पढ़ने के प्रति ललक और जिज्ञासा होती है। लेकिन स्वभावतः निहित यह इच्छा उसके स्कूल में प्रवेश लेने के कुछ दिनों बाद ही तिरोहित होने लगती है। स्कूल बच्चों को इस तरह पढ़ना नहीं सिखा पाते कि वे स्वयं जानकारी के लिए पढ़ें, किताबें ढूँढ़ें, आनंद के लिए पढ़ें और स्थायी पाठक बनें। इसका एक मुख्य कारण है - स्कूल में पढ़ना सिखाने के तरीके। आमतौर पर हमारे विद्यालयों में पढ़ना सिखाने की शुरुआत वर्णमाला रटवाकर, टुकड़े-टुकड़े में शब्द, फिर वाक्य पढ़ना सिखाकर की जाती है। निरर्थक वर्णमाला को रटने की कवायद बच्चे के लिए इतनी नीरस होती है कि उसके अंदर प्रवाहित पढ़ने का स्रोत बहने के पहले ही सूख जाता है। दरअसल कई शिक्षक स्वयं नहीं जानते कि पढ़ना है क्या? **सही मायनों में 'पढ़ना' है क्या?** लेख पढ़ने की इसी समझ को विकसित करता है। पढ़ने से जुड़े विभिन्न आयामों पर चिंतन के द्वार खोलते हैं संकलन के अन्य लेख।

शुरुआती पढ़ाई का एक वैकल्पिक रास्ता लेख प्राथमिक स्कूलों में शिक्षण के लिए अपनाए जा रहे तौर-तरीकों की मौजूदा स्थिति और उसमें अंतर्निहित शुरुआती पढ़ाई सीखने की अवधारणाओं को परखने का प्रयास है। इसी लेख में साक्षरता के प्रारंभिक विकास के लिए एक वैकल्पिक तरीके - इमरजेंट लिटरेसी पर भी चर्चा है।

बच्चों के लिए पढ़ना तभी आनंददायी बन सकता है जब रोचक क्रियाकलापों के माध्यम से पढ़ना सिखाया जाए। **बच्चों में पढ़ने के प्रति नफ़रत पैदा करना** लेख यह समझ विकसित करता है कि किस प्रकार बच्चों के लिए पढ़ना सुखद बनाया जा सकता है।

हर बच्चा पढ़ना चाहता है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारे देश में कई बच्चे ऐसे हैं जिन्हें पढ़ने के लिए पाठ्यपुस्तकों के अलावा कुछ नहीं मिलता। बच्चों के लिए परिवेश में मौजूद सामग्री कितना अर्थ रखती है, कैसे दे सकते हैं पढ़ने का समृद्ध माहौल? यह जानकारी दे रहा है लेख **बच्चों को दें पढ़ने का समृद्ध वातावरण।**

पढ़ने का माहौल बनाने में पुस्तकों की अहम भूमिका है। किताबें बच्चों को पढ़ने की ओर ले जाती हैं। कैसी हो बच्चों की किताबें? क्या-क्या हो बच्चों की किताबों में? बच्चों के लिए किताबें चुनते समय किन बातों को ध्यान में रखा जाए? इन सब मुद्दों पर चर्चा कर रहा है लेख **क्या-क्या हो बच्चों की एक किताब में।**

चित्रों से सराबोर रंग-बिरंगी किताबें न केवल बच्चों को आनंदित कर उनकी भाषा समृद्ध करती हैं बल्कि इन पुस्तकों से उनका कलाबोध भी विकसित किया जा सकता है। चित्रों से सराबोर किताबों से जुड़े बच्चों के कुछ अनुभवों को पिरोए हुए है लेख **चित्रात्मक-पुस्तकें : बच्चों के साथ अनुभव एवं टिप्पणियाँ।**

बच्चों के लिए किताबों से रचा गया प्यार भरा संसार बसता है पुस्तकालय में। लेकिन अभी तक न जाने क्यों यह धारणा बनी हुई है कि पुस्तकालय तो सिर्फ बड़ी कक्षाओं के लिए ही होते हैं। बच्चों के लिए आनंददायक होते हैं पुस्तकालय। लेख **पुस्तकों का खजाना-बच्चों का पुस्तकालय** किताबों और पुस्तकालय की उपयोगिता का वर्णन करता हुआ हर विद्यालय में बाल पुस्तकालय का सुझाव देता है।

बच्चों को अपनी पसंद की किताब खुद चुनकर पढ़ने का मौका मिले तो फिर किताबों से उनका मोह बढ़ते देर नहीं लगती। ऐसे ही किए गए प्रयास को हम सबके साथ बाँट रहा है लेख **पुस्तकें पढ़ें, आगे बढ़ें।**

पढ़ने की दहलीज़ पर कदम रखते ही नन्हे-मुन्नों को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। कुछ बच्चे दहलीज़ को लॉघ पाते हैं और सफलताओं एवं संभावनाओं का विस्तृत संसार उनके सामने खुला होता है वहीं कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिन्हें प्रतिभा होते हुए भी स्वयं की लाख कोशिशों के बावजूद दहलीज़ से ही वापस लौटना पड़ता है और वे अज्ञान के अंधकार में खो जाते हैं। क्यों लौट जाते हैं ये बच्चे? क्या यह बच्चे का दोष है या शिक्षकों का या फिर उनके निरक्षर अभिभावकों का? कुछ ऐसे ही सवाल उठाए गए हैं, इस संकलन की अगली प्रस्तुति **अशोक की कहानी** के माध्यम से।

प्यार, भरोसा और आत्मीयता ही पढ़ना सिखाने की बुनियाद है। केवल ज्ञान का कोई सिद्धांत पढ़ना नहीं सिखा सकता। पढ़ने का कौशल आत्मीयता का याचक है। **पढ़ने की दहलीज़ पर** लेख में साथी शिक्षकों को इसी बात का अहसास कराने की कोशिश की गई है।

हमें उम्मीद है कि इस संकलन के लेख पढ़ने के विभिन्न पहलुओं पर सभी साथी शिक्षकों में सही समझ विकसित करेंगे और तब पढ़ने की दहलीज़ पर बड़ी आशाओं के साथ आया कोई भी नन्हा मन कभी निराश होकर नहीं लौटेगा।

क्या कहते हैं लेख

आमुख	iii
1. सही मायनों में आखिर 'पढ़ना' है क्या?	1
2. शुरुआती पढ़ाई का एक वैकल्पिक रास्ता	7
3. बच्चों में पढ़ने के प्रति नफ़रत पैदा करना	17
4. बच्चों को दें पढ़ने का समृद्ध वातावरण	30
5. क्या-क्या हो बच्चों की एक किताब में?	34
6. चित्रात्मक-पुस्तकें — बच्चों के साथ अनुभव और टिप्पणियाँ	41
7. पुस्तकें पढ़ें, आगे बढ़ें	47
8. पुस्तकों का खजाना — बच्चों का पुस्तकालय	50
9. अशोक की कहानी	55
10. पढ़ने की दहलीज़ पर	59

कुछ लिख के सो
कुछ पढ़ के सो
तू जिस जगह जागा सवेरे
उस जगह से बढ़ के सो

– भवानी प्रसाद मिश्र



सही मायनों में आखिर 'पढ़ना' है क्या?

शारदा कुमारी*

निशि कक्षा 3 की विद्यार्थी है। उसकी अध्यापिका के अनुसार वह **पढ़ना** अच्छी तरह से सीख रही है। नीचे किसी गद्य खंड की दो पंक्तियाँ दी गई हैं। निशि इन पंक्तियों को किस तरह पढ़ती है, प्रस्तुत है उसकी एक झलक—

“बरसात आने वाली थी। शांति अभी घर नहीं आई थी।”

निशि इन पंक्तियों को कुछ इस तरह से पढ़ती है — “बस का **ब** रस्सी का **र** सरौते का **स** उसमें **आ** का डंडा फिर तकली का **त** बना **ब...** **र...** **सा...** **ता**। आम का **आ** नल का **न** एड़ी वाली मात्रा बना आने, वा का **व** उसमें **आ** का डंडा फिर लटू का **ल** और उसमें बड़ी ई की मात्रा। मतलब के **वाली** फिर थन का **थ** और बड़ी ई की मात्रा हो गया **थी**। शरीफ़े का **श** उसमें पड़े दो डंडे फिर नल का **न** तकली का **का** **त...**।

क्या आप निशि की पठन शैली को पहचान पाए हैं? किसी भी शब्द को पढ़ने के लिए वह रटी हुई वर्णमाला के अक्षरों को सामने लाती है, फिर अक्षर को जिस शब्द से जोड़कर रटवाया गया था, उसी अक्षर और शब्द को बोलकर कोई नया शब्द पढ़ पाती है। जैसे—**बरसात** में **ब** की पहचान के लिए बस का **ब** रस्सी का **र** सरौते का **स** फिर **आ** का डंडा और तकली का **त**। तभी कहीं जाकर **बरसात** शब्द से पहचान बन सकी है। अभी केवल शब्द से ही पहचान बन पाई है। इस शब्द के अर्थ से जुड़ने का भी यहाँ कोई भाव है, इसमें संदेह है। क्या हम कह सकते हैं कि निशि पढ़ना सीख गई है या सीख रही है?

मनोज कक्षा चार का विद्यार्थी है। वह कुछ इस तरह से पढ़ता है—

‘**ब र स आ त** बरसात **आ ा न** े आने **वा** - **ली** ई वाली **हे ऐ** है। यानी कि शब्द के हर अक्षर पर अलग-अलग जोर देकर बोलना फिर शब्द को एक साथ बोलना। क्या इसे भी पढ़ पाने की श्रेणी में रखा जा सकता है?

* वरिष्ठ प्रवक्ता, डायट, सेक्टर 7, आर.के.पुरम, नई दिल्ली

इमरान पाँचवीं कक्षा का विद्यार्थी है। उसका पठन-कौशल कुछ भिन्न है। पाठ्यपुस्तक के किसी भी पाठ का नाम लीजिए, तुरत-फुरत उस पाठ को खोलकर फर्हादेदार अंदाज़ में पाठ पढ़ जाएगा, परंतु पाठ्यपुस्तक से इतर कोई भी पाठ्यसामग्री पढ़ने के लिए दे दी जाए, तो पढ़ना तो दूर की बात अक्षरों की पहचान भी नहीं हो पाती। यह किस तरह का पठन कौशल है? पुनः तीसरी कक्षा में आते हैं। भानु को पढ़ने के लिए एक वाक्य दिया गया है, “वह दौड़कर बस में चढ़ गया।” इस वाक्य के साथ एक चित्र दिया गया था, जिसमें एक छोटा-सा बच्चा भागती हुई मुद्रा में बस पर चढ़ने की कोशिश में था। भानु ने इस वाक्य को पढ़ा, “**व ह ब स म च ढ ग या**”

यही वाक्य सुनीरा को भी पढ़ने के लिए दिया गया। सुनीरा का ध्यान लिखे हुए पर था या चित्र पर, यह आप तय करें। उसने वाक्य को इस तरह से पढ़ा, “बच्चा भागकर बस में चढ़ गया।”

पीयूष चौथी कक्षा में है। वह भी तस्वीर को देखकर और शायद कुछ अक्षरों/शब्दों को पहचान कर अपना ही ‘टेक्स्ट’ बना लेता है। जामुनी पढ़ तो लेती है, उसे पढ़े जा रहे अक्षरों, शब्दों और मात्राओं की भी पहचान है, पर पढ़े गए से भाव/अर्थ क्या निकला, यह अभी उसे पता नहीं। इसीलिए कहानी पढ़ने की उत्सुकता होने पर भी वह यही कहेगी, “आप पढ़कर सुनाओ, पहले आप पढ़कर सुनाओ।” जबकि विद्यालयी शिक्षा के इस स्तर (पाँचवीं कक्षा) तक आते-आते उसे स्वयं ही पढ़कर कहानियों का आनंद लेना चाहिए।

आपके सामने बच्चों की पठन-शैलियों की कुछ बानगियाँ यहाँ प्रस्तुत कीं। किस बच्चे के विषय में आप कहेंगे कि वह सही मायनों में पढ़ पा रही/रहा है? या फिर सभी के लिए कहा जा सकता है कि ‘पढ़ तो आखिर सभी रहे हैं।’

कौन सही मायनों में पढ़ पा रहे हैं या नहीं, यह तय करने से पहले यह समझने का प्रयास करते हैं कि ‘पढ़ने’ का मतलब आखिर है क्या? विचारकों और भाषाविदों ने पढ़ने के संदर्भ में कुछ इस तरह से अपने मत प्रस्तुत किए हैं—

- लिखे हुए से अर्थ गढ़ना **पढ़ना** ही है।
- पढ़ने का अर्थ है लिखे हुए से धारणाओं को गढ़ना और साथ ही विचारों को आपस में जोड़ पाना और उन्हें अपनी स्मृति में रखना।
- पढ़ना सिर्फ वर्णमाला की पहचान, शब्द तथा वाक्य को बोल भर पाना नहीं है, बल्कि इसके आगे बहुत कुछ और भी है। यानी कि लिखे हुए के अर्थ

को समझकर अपना नज़रिया बनाना या फिर अपनी निजी समझ विकसित करना है।

- शब्द के हिज्जे करके बोलना 'पढ़ना' नहीं है। पढ़ने का अर्थ है, लिखे हुए के साथ संवाद करना, अपने अनुभवों एवं सैद्धांतिक संरचना के साँचे में लिखे हुए को ढालना।
- पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, इसमें शामिल है अक्षरों की आकृतियाँ और उनसे जुड़ी ध्वनियाँ, वाक्य-विन्यास, शब्दों और वाक्यों के अर्थ और साथ ही अनुमान लगाने का कौशल।
- पढ़ने में महत्वपूर्ण है लिखी हुई जानकारीयों या संकेतों की बानगी ग्रहण करना।

यदि हम पढ़ने से संबंधित उल्लिखित परिभाषाओं के तनिक भी निकट जा पाते हैं तो स्वतः ही निर्णय ले पाएँगे कि निशि, मनोज, इमरान, भानु और जामुनी इनमें से कोई भी अभी पढ़ना नहीं जानते। दरअसल, जब हम शब्दों के अलग-अलग हिज्जे करते हैं यानी कि टुकड़े-टुकड़े में किसी शब्द फिर वाक्य को पढ़ते हैं तो हमारा मस्तिष्क लिखी हुई सामग्री की संपूर्ण मात्रा या वज़न पर ध्यान न देकर अलग-अलग शब्द, उसके टुकड़ों पर ध्यान देता है। इससे मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता है और अर्थ ग्रहण करने की क्षमता तो कहीं खो ही जाती है। एक वाक्य के सारे शब्दों पर फिर शब्दों के अलग-अलग अक्षरों पर ध्यान देना अर्थ से कहीं दूर, बहुत दूर ले जाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पढ़ने से आनंद पाना तो बहुत दूर की बात है, 'पढ़ना' भी ठीक से नहीं आ पाता है।

बच्चों को सही तरीके से पढ़ना सिखाने या 'पढ़ने' की क्षमता विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि बच्चों को 'डीकोडिंग' से दूर रखा जाए। 'डीकोडिंग' से मतलब है शब्द को टुकड़ों में बाँटकर पहचानना फिर उसे बोल पाना या पढ़ पाना। विद्यालयी शिक्षा में भाषा के संदर्भ में 'डीकोडिंग' और उस पर आधारित विधियाँ जैसे—वर्णमाला, उच्चारण या शब्द बोलना जैसी विधियाँ (?) बहुत ही लोकप्रिय हैं।

इनके लोकप्रिय होने के दो मुख्य कारण हो सकते हैं, पहला तो यही कि शायद शिक्षक 'पढ़ने' के सही मतलब को नहीं समझ पाए हैं और तदनुसार पढ़ना सिखाने की सही विधियों की जानकारी हासिल नहीं कर पाए हैं। दूसरा महत्वपूर्ण कारण शायद यही हो कि इस तरह से पढ़ाना उन्हें अधिक सुविधाजनक लगता हो। (जबकि असल मायने में इस तरह से पढ़ना सिखाने में शिक्षक और विद्यार्थी

दोनों पर ही समय और मेहनत का अतिरिक्त बोझ पड़ता है।) पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले बच्चे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह से शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज्यादा बोझ डाल देते हैं। सही तरीके से पढ़ने वाले बच्चों की आँखें ऐसा बोझ नहीं डालने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफ़िक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। वे किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देते और न ही वे एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देते हैं। पढ़ते समय उनकी आँखें लिखी हुई सामग्री के छोटे से अंश पर गौर करती हैं, शेष भाग अनुमान के ज़रिए ग्रहण किया जाता है। अनुमान का आधार होता है अक्षरों की आकृतियाँ, शब्द, उनके अर्थ और उनके संयोजन तथा दुनिया से उन बच्चों का परिचय।

आपको शायद लगे कि इस तरह से पढ़ना सिखाना तो एक बहुत ही क्लिष्ट प्रक्रिया होगी। कदापि नहीं, इस सत्य के साथ कि ‘पढ़ना’ सिखाने की कोई एक अचूक विधि नहीं हो सकती और न ही पढ़ना सिखाने के लिए एक अकेली विधि पर ही निर्भर रहा जा सकता है। हर विधि की अपनी सीमाएँ होती हैं, जिन्हें शिक्षक बखूबी पहचान सकते हैं। इससे पहले कि पठन कौशल विकसित करने की विधियों पर चर्चा की जाए, एक अहम सवाल पर बात करना ज़रूरी होगा कि बच्चे पढ़ना क्यों नहीं सीख पा रहे हैं? इस सवाल के उत्तर के रूप में मैं अपने कुछ अनुभव बयाँ करना ज़रूरी समझती हूँ—

- अन्य विषयों की तरह भाषा की घंटी भी ‘रटने’ की ही घंटी है, और किसी लिखे हुए को रटकर पढ़ना नहीं सीखा जा सकता।
- कक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा बोलने और सवाल करने को एक ‘नकारात्मक मूल्य’ के रूप में देखा जाता है। कक्षाओं के वातावरण में विद्यार्थियों की ‘मुक्त अभिव्यक्ति’ के लिए बहुत ही कम गुंजाइश रखी गई है जो सापेक्ष रूप से उनकी पठन प्रक्रिया के आड़े आती है।
- भाषा के बुनियादी कौशल — बोलना और सुनना दोनों को ही दरकिनार कर अक्षरों/ वर्णमाला को रटवाए जाने की अंतहीन कवायदें बच्चों में मौजूद ‘पढ़ना’ सीखने की ललक का शुरू में ही कत्तल कर देती हैं।
- पाठ्यपुस्तकों में पठन कौशल को लेकर कोई सुसंगत नीति नहीं होती।

- पाठ्यपुस्तकों की भाषा, बच्चे की अपनी भाषा और अनुभवों में गहरा अंतर होता है।
- अध्यापक बच्चों की उच्चारण संबंधी गलतियों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि बच्चे का पढ़ने के प्रति किसी तरह का उत्साह बन ही नहीं पाता।
- सुविधावर्चित समूह के बच्चे विशेषकर प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी अपने आप को विद्यालय की किसी भी घटना/प्रक्रिया से नहीं जोड़ पाते, चाहे वह पाठ्यपुस्तक में छपी सामग्री हो या फिर शिक्षण विधियाँ, अथवा अध्यापकों का व्यवहार। कहीं भी वे स्वयं को ढूँढ़ नहीं पाते। पाठक शायद सवाल करें कि इन सबसे 'पढ़ना सीखने' का क्या लेना-देना, थोड़ा नहीं, बहुत लेना-देना है। दरअसल, अपनी सांस्कृतिक-सामाजिक पहचान खोकर किसी भी प्रक्रिया से जुड़ पाना बहुत ही कठिन है और फिर पढ़ा क्या जाए? क्या वह जिसमें न तो 'हम' हैं और न ही 'हमारे अनुभव'? इस सवाल का उत्तर ढूँढ़ने की प्रक्रिया के दौरान ही आप समझ लेंगे कि उक्त बिंदु का 'पढ़ने' से कोई सरोकार है या नहीं।
- हमारे विद्यार्थी पढ़ना इसलिए भी नहीं सीख पाते, क्योंकि विद्यालय और घर दोनों ही जगहों पर पढ़ने योग्य रोचक सामग्री उन्हें मिल ही नहीं पाती। जिन बच्चों को मनचाही पठन सामग्री मिल भी जाती है, उन्हें पढ़ने की आज़ादी नहीं है क्योंकि पाठ्यपुस्तक इतर सामग्री पढ़ने से परीक्षा में अच्छे अंक न ला पाने का भय अभिभावकों को हमेशा घेरे रहता है। मेरे स्मृति कोष में ऐसे बहुत से दृश्य टँके हुए हैं, जब मैंने कई बच्चों के हाथों से कथा-कहानियों की किताबें छिनते हुए देखा है सिर्फ़ इस वज़ह से कि "इन्हें पढ़कर क्या खाक नंबर ला पाओगे?"

बच्चों को सही मायनों में पढ़ना सिखाने के लिए सबसे पहले तो ज़रूरी है कि मेरे इन अनुभवों पर गौर किया जाए। शायद फिर नए से नए तरीके खुद-ब-खुद सामने आ जाएँ। दूसरी ज़रूरी बात कि अध्यापक इस बात की अहमियत समझें कि पढ़ने का अर्थ मात्र शब्दों तथा अक्षरों की पहचान से नहीं है बल्कि उनमें से अर्थ ढूँढ़ने से है और अर्थ हिज्जे करके शब्द पढ़ने से नहीं आते बल्कि लिखे हुए में अपने अनुभव और अनुमान जोड़ने से आते हैं।

तीसरी महत्वपूर्ण बात 'पढ़ने' का मतलब सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों के पाठों को पढ़ पाना नहीं बल्कि अपने चारों ओर बिखरी अथाह लिखित और मुद्रित सामग्री को

पढ़ पाना और उसमें से अपने लिए कुछ निकाल पाना असल मायनों में 'पढ़ना' है। भाषा के उच्चस्तरीय कौशल तो 'पढ़ने' की परिभाषा को कहीं और दूर ले जाते हैं। उनके अनुसार पढ़ने के प्रति सदैव एक ललक लिए रहना, साहित्य का रसास्वादन करना, अपने सामाजिक परिवेश को समझकर उसके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना ही 'पढ़ना' है। क्या हम निशि, मनोज, भानु, जामुनी आदि को इन उच्चस्तरीय कौशलों तक ले जा पाएँगे? निश्चित रूप से, बशर्ते 'सही मायनों में पढ़ना क्या है?' को हम समझ पाएँ और तदनुसार भाषा के सत्र में कक्षा की विविधता के अनुसार वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग को स्थान दे पाएँ।

संदर्भ

- कृष्ण कुमार - बच्चे की भाषा और अध्यापक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली।



शुरुआती पढ़ाई का एक वैकल्पिक रास्ता

शोभा सिन्हा*

आम जनता को शिक्षित करने में कामयाबी हासिल करना भारत का एक महत्वपूर्ण ध्येय है। फिर भी जनशिक्षा या 'सबके लिए शिक्षा' के संबंध में हमारे वाँछनीय उद्देश्यों और उपलब्धियों के बीच जो खाई है वह खासी चिंताजनक है। हालाँकि, आबादी में पढ़ लिख सकने वालों की संख्या में इज़ाफ़ा हुआ है पर निरक्षरों की संख्या में भी बढ़ोतरी जारी है। असल में हमारे यहाँ जिन लोगों को साक्षर माना जाता है उनमें एक बड़ी तादाद उन लोगों की है जो पढ़ तो सकते हैं लेकिन अपने पढ़े हुए को समझ पाने की क्षमता जिनमें नहीं है। भले ही कुछ प्रगति हुई है, पर अन्ततः कुल दृश्य काफ़ी निराशाजनक है। इस बात पर विचार-विमर्श बेहद ज़रूरी है कि स्कूल में शिक्षित किए जाने के शुरुआती वर्षों में क्या हो रहा है? क्योंकि यही वह समय है जब ज्यादातर भारतीय बच्चों का अक्षरों के संसार से पहला संपर्क होता है और वे शिक्षित/साक्षर होने के लिए स्कूलों पर ही निर्भर होते हैं। इसी वजह से प्राथमिक स्कूलों की मुख्य ज़िम्मेदारी हो जाती है कि वे बच्चों को साक्षर और शिक्षित करने में मदद करें। यदि स्कूल इस मामले में असफल होते हैं तो भविष्य में बच्चों के लिए इसके परिणाम बहुत गंभीर होंगे। इसलिए भारतीय स्कूलों की कक्षाओं में प्रारंभिक पढ़ाई के लिए अपनाए जा रहे तरीकों या पद्धतियों की पड़ताल महत्वपूर्ण है।

मैं इस पर्व में प्राथमिक स्कूल में शिक्षण के लिए अपनाए जा रहे तौर-तरीकों की मौजूदा स्थिति और उसमें अंतर्निहित शुरुआती पढ़ाई, सीखने की धारणाओं को परखने की कोशिश करूँगी। मैं बाद में एक नए वैकल्पिक रास्ते 'इमरजन्ट लिटरेसी'* (नवोन्मेषी साक्षरता) का वर्णन करूँगी।

शुरुआती पढ़ाई — शिक्षण की मौजूदा स्थिति

स्कूलों में शुरुआती पढ़ाई का जो तरीका काम में लाया जाता है उसका लक्ष्य बच्चों को मात्र लिखित भाषा के औपचारिक और यांत्रिक पहलुओं पर महारत

* रीडर, सी.आई.ई., दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हासिल करवाना ही है। बच्चे अक्षरों को पढ़ने और लिखने, अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाने और शब्दों को मिला कर वाक्य बनाने का अभ्यास करते हैं। अक्षर वह बुनियादी इकाई है जिससे वे शुरुआत करते हैं। ग्राफोफ़ोनिक्स (अक्षरों का आकार तथा उनकी ध्वनि) पर ज़रूरत से ज़्यादा जोर देना प्रारंभिक पढ़ाई को अर्थहीन बनाकर उसको उसके कार्यात्मक (फंक्शनल) पहलुओं से काट देता है।

‘इमजरंट लिटरेसी’ जैसा कि जाहिर है एक पश्चिमी अवधारणात्मक शब्द है। इसका बहुप्रचलित और सटीक हिंदी समानार्थी शब्द तक हमारे देखने में नहीं आया है। अँग्रेज़ी में ‘इमरजंट का अर्थ नए (नव) और उन्मेष या उदय कर रहे हैं मसलन इमरजंट नेशन्स, स्टेट्स, आदि। हमने इसका हिंदी रूपांतर नवोन्मेषी किया ‘लिटरेसी’ का हिंदी रूप ‘साक्षरता’ भी हमारे यहाँ आमतौर से प्रौढ़ शिक्षा के संदर्भ में उपयोग में आता है लेकिन यहाँ इसे हमने बच्चों की प्रारंभिक पढ़ाई (चाइल्ड लिटरेसी) के संदर्भ में इस्तेमाल किया है।

हिंदी प्रवेशिकाओं-प्राइमरों के एक विश्लेषण से हम देख सकते हैं कि इस तरीके से पढ़ाना-सिखाना क्या शक्ति अख्तियार करता है। भारतीय स्कूलों की कक्षाएँ पाठ्यपुस्तकों पर बेहद निर्भर करती हैं अतः उनकी प्रवेशिकाएँ साक्षरता के प्रारंभिक वर्षों के अध्यापन की काफ़ी अच्छी सूचक (इंडीकेटर्स) हो सकती हैं। हिंदी प्रवेशिकाओं का एक विवेचन बताता है कि वे बहुत गहराई से ध्वनिशास्त्र (फ़ोनिक्स) केंद्रित हैं (सिन्हा, 2000)। पुस्तकों के अध्याय अक्षरों, खासकर स्वरों के इर्द-गिर्द गढ़े जाते हैं और विषयवस्तु पर उनमें बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अतः आमतौर से अध्यायों की शुरुआत समान ध्वनियों वाले शब्दों से होती है, जैसे- कार, भात, सागर, सरकार, दमा, शाम, तलवार, साल, काला इत्यादि, जिन्हें समान ध्वनि ‘आ’ (जैसे कार) की वजह से एक साथ रखा गया है।

अधिकांश पाठ्यसामग्री अर्थहीन होती है और वास्तव में सक्रिय तौर से बच्चों को अर्थ पर गौर न करना ‘सिखाया’ जाता है। अगर वे अर्थ समझने के लिए पढ़ते हैं तो उनका यह अनुभव खासा बेतुका सिद्ध होगा क्योंकि मूलतः पाठ से सुसंगत या समझने लायक कुछ होगा ही नहीं। बच्चों से इन पाठों में आनंद प्राप्त करने की उम्मीद करना मुश्किल है।

ऐसे शब्दों की सूची के उपरांत वे वाक्य आते हैं जिनमें किसी स्वर विशेष के अभ्यास को भरपूर अवसर दिया जाता है। मिसाल के लिए ‘ओ’ (कोट का स्वर) स्वर पर आधारित एक पाठ देखें-

ढोल बजाओ/ चोर भगाओ
 शोर ना मचाओ
 पाठशाला चलो
 किताब खोलो
 बोल कर पढ़ो
 देखकर लिखो। तोते को राम राम
 रटने दो। (हिंदी रीडर पृष्ठ 12)

और सब कुछ को दरकिनार कर स्वर अथवा ध्वनियों के प्रति यह अंध-मोहग्रस्तता पाठ को किसी बिंदु/विषय पर केंद्रित नहीं रहने देती और कभी-कभी तो यह उन्हें साफ़ तौर से अटपटा असंगत और बेमानी बना देती है मसलन आम पर चढ़ दीपू (हिंदी रीडर, पृ.17), गिलास सिर पर मत रख (इन्द्रधनुष स्वरमाला, पृ. 19)। हिंदी प्रवेशिकाओं के ये उदाहरण दिखाते हैं कि अधिकांश पाठ्यसामग्री अर्थहीन होती है और वास्तव में सक्रिय तौर से बच्चों को अर्थ पर गौर न करना 'सिखाया' जाता है। अगर वे अर्थ समझने के लिए पढ़ते हैं तो उनका यह अनुभव खासा बेतुका सिद्ध होगा क्योंकि मूलतः पाठ में सुसंगत या समझने लायक कुछ होगा ही नहीं। बच्चों से इन पाठों में आनंद प्राप्त करने की उम्मीद करना मुश्किल है। विषयवस्तु के अभाव में वे मात्र ध्वनि संरचना (पैटर्न) का मशीनी ढंग का रियाज बन कर रह जाते हैं।

यहाँ दिए गए अध्याय में बाल-भारती श्रृंखला ने विषय पर टिकने या केंद्रित होने की तो कोशिश की है पर लेखन शैली के कारण वह बहुत पठनीय नहीं बन सका है। उदाहरण के लिए इसमें एक पाठ है-

आओ, खाना खाओ
 आओ, कमला आओ
 आओ, मदन आओ
 खाना बन गया।
 मीरा को साथ लाओ
 सब मिल कर खाना
 खाओ
 आओ, मीरा आओ
 आओ, खाना खाओ

माता जी, दाल-चावल दो
लो मीरा, दाल-चावल लो
साग लो, चटनी लो
मदन, रोटी लो, रायता लो
खाना, चबा-चबा कर खाओ
(बाल भारती, भाग 1, पृष्ठ 26-27)

इस पाठ की समूची अभिरचना-पैटर्न-एक बनावटी भाषा पर आधारित है। वाक्यों में प्रवाह का अभाव होने के कारण इस तरह की भाषा बच्चों के लिए दुरूह होती है। पढ़ते वक्त बच्चे अपनी अब तक की जानी हुई बोली भाषा का उपयोग करते हैं और चूँकि वे असल जिंदगी में इस तरह की कृत्रिम भाषा का कतई इस्तेमाल नहीं करते अतः यह उनके पढ़ने में अड़चन पैदा करती है। यह विषयवस्तु भले ही संगत है पर इसको दिलचस्प नहीं कहा जा सकता।

ऐसी विषयवस्तुएँ आमतौर से बच्चों की जिंदगी के लिए अप्रासंगिक ही नहीं, खासी उबा देने वाली भी होती हैं। जो बच्चे इस तरह की पाठ्यसामग्री पढ़ते हैं उनके लिए पढ़ना एक यांत्रिक और निरर्थक गतिविधि बन जाएगी। जहाँ तक लिखने का सवाल है, वहाँ भी बच्चों से अक्षर तथा शब्द बनाने और सही वर्तनी सीखने पर ध्यान देने के लिए कहा जाता है। अतः फिर से उन्हें बाकी सब कुछ भूलकर भाषा के औपचारिक, ऊपरी पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है।

स्कूलों में बच्चों का पढ़ाई से पहला संपर्क नितांत हताश करने वाला और प्रेरणाहीन होता है। प्राथमिक स्कूलों का मुख्य लक्ष्य है- बच्चों को अक्षरों (वर्णमाला) पर अधिकार प्राप्त करवाना। इनमें पढ़ने के कार्यात्मक और आनंदपरक पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाता। अधिकतर स्कूल, खासकर निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग के बच्चों के लिए चलने वाले स्कूल निम्न कोटि के हैं और उनमें रुचिकर अध्यापन तथा बाल साहित्य की बेहद कमी है। बच्चे बाहरी दुनिया में शिक्षा/साक्षरता के मूल्यवान होने का संदेश प्राप्त करते हैं। पर स्कूलों में उनके अनुभव इस बात का खंडन करते हैं।

इस प्रकार की शिक्षा के तहत बच्चे अत्यंत निराशाजनक परिस्थिति का सामना करते हैं। वे जिस वाचिक-भाषा/बोली को सीखने के साथ-साथ बोलचाल में उसका अर्थपूर्ण ढंग से उपयोग करने लगते हैं, उसके विपरीत पढ़ना-लिखना सीखने की प्रक्रिया से उन्हें कोई फायदा होता नज़र नहीं आता। इस पद्धति की यही सबसे

बड़ी दिक्कत है कि पहले बच्चे से सीखने की और फिर सुदूर भविष्य में कभी उस सीखे हुए के इस्तेमाल का इंतज़ार करने की उम्मीद नहीं की जा सकती। बच्चे सुनते तो यह हैं कि शिक्षा लाभकारी होती है लेकिन स्कूल में जिस चीज़ से उनका सामना होता है वह न तो उपयोगी होती है न ही आनंदकर। बच्चे शिक्षित होना चाहते हैं पर जो दक्षताएँ उन्हें सीखनी पड़ती हैं उसकी समूची प्रक्रिया उन्हें चकरा देती है। पढ़ना उन्हें एक यांत्रिक और आनंदरहित अनुभव मालूम पड़ता है। वास्तव में, बच्चों को जिन कार्यों या गतिविधियों में संलग्न किया जाता है उनका अप्रमाणिक तथा उद्देश्यहीन होना शिक्षा के विकास में बाधक बनता है। पूर्वानुमान लगाया जा सकता है कि इस किस्म की शिक्षण पद्धति शुरुआती स्कूली वर्षों में ही विद्यार्थियों के बड़ी तादाद में शिक्षा बीच में छोड़ देने (ड्राप आउट्स) की समस्या से गहराई से ताल्लुक रखती है (कुमार, 1992)।

पारंपरिक तरीकों की दिक्कतें

असल में शिक्षण के पारंपरिक प्रारूप (मॉडल) में पढ़ने तथा सीखने के तरीकों के मूल में निहित पूर्व धारणाएँ, मान्यताएँ खुद समस्यात्मक हैं। इस पद्धति की पहली दिक्कत तो यही है कि इसमें पढ़ने का बड़ा संकीर्ण अर्थ लगाया जाता है, यानी लिखित शब्द को पहचान कर उसके मौखिक सम-शब्द (समकक्ष शब्द) की तलाश करना। पढ़ना सीखने को शब्दों के अर्थ खोलने की निरी कवायद के रूप में देखा जाता है। बच्चों से उम्मीद की जाती है कि वे नीचे से ऊपर जाने की 'बॉटम अप' पद्धति से अक्षर पहचान कर शब्द बनाना, फिर शब्दों से वाक्य बनाना सीखते हुए आगे बढ़ें। हाल के शोध इस धारणा को चुनौती देते हैं। अक्षरों से शुरुआत करना परेशानी पैदा करने वाला होता है क्योंकि वे कुल मिलाकर अमूर्त और अर्थहीन होते हैं। बच्चे के लिए पढ़ना प्रारंभ करने के लिए अक्षर एक सरलतम इकाई नहीं है। इसके अलावा किसी पाठ्यसामग्री को 'बॉटम अप' तरीके से समझाया या प्रोसेस नहीं किया जाता। अक्षरों पर ज़रूरत से ज़्यादा जोर देना बोध के प्रति बच्चे का ध्यान विचलित करता है।

पढ़ना बुनियादी तौर से एक अर्थवान गतिविधि है। फिर भी पढ़ने के परंपरागत प्रारूप शब्द को अर्थ से जोड़ने पर तवज्जोह नहीं देते और इसे पढ़ने का अभिन्न अंग नहीं मानते।

इस प्रारूप के साथ दूसरी दिक्कत है कि इसमें भाषा का कोई कार्यात्मक इस्तेमाल नहीं है। इसमें मौखिक यानी बोलचाल की भाषा के विकास के विपरीत,

जिसमें बच्चे भाषा को ग्रहण करना तथा उसका उपयोग करना एक साथ सीखते हैं, उनसे उम्मीद की जाती है कि वे पहले लिखित भाषा के औपचारिक पहलुओं में पूर्णतया पारंगत हो जाएँ और फिर उसका प्रयोग करें।

इस प्रारूप की तीसरी समस्या है- पढ़ने के संबंध में इसका व्यवहारवादी-सा (बिहेविअरिस्टिक) नज़रिया। यह क्रमानुसार (आनुक्रमिक) दक्षता और अभ्यास पर जोर देती है। इसमें भाषा को अभ्यास के उद्देश्य से, टुकड़ों में बाँट कर अर्थविहीन या बेमतलब की इकाइयों में बदल दिया जाता है और यह किसी चीज़ को उसके समूचेपन में जानने का सही तरीका नहीं है। इससे मात्र अर्थहीनता में ही इज़ाफ़ा होता है।

एक वैकल्पिक रास्ता

इमरजन्ट लिटरेसी पर आधारित कक्षा और रूढ़ तरीकों पर आधारित कक्षा में बहुत फ़र्क होगा। यह कक्षा बच्चों को पढ़ने-लिखने के प्रति आकृष्ट करने के लिए तरह-तरह के विभिन्न अवसर प्रदान करवाएगी और इसमें विभिन्न प्रकार की लिखित सामग्री उपलब्ध होगी जिससे बच्चे अंतः क्रियाएँ (इंटररेक्ट) कर सकें।

साक्षरता के प्रारंभिक विकास के लिए एक वैकल्पिक तरीके या पद्धति पर विचार करना महत्वपूर्ण होगा। इमरजन्ट लिटरेसी (नवोन्मेषी साक्षरता) का मॉडल पढ़ना और लिखना सीखने का एक उन्नतिशील प्रारूप है। यह पढ़ने और सीखने के विकासात्मक नज़रिए को लेकर चलते हुए नवीनतम शोध से सामंजस्य रखता है।

हाल के वर्षों में हुए व्यापक शोध बताते हैं कि पढ़ना सिर्फ़ शब्दों में छिपे अर्थ को खोलने (डिकोडिंग) तक सीमित नहीं है। पढ़ने की प्रक्रिया में ग्राफ़ोफ़ोनिक (अक्षर ध्वनि) के साथ सीमेन्टिक (अर्थ अभिप्राय) तथा सिन्टैक्टिक (शब्दक्रम) के संकेत-शब्द शामिल होते हैं। पढ़ने वाला बच्चा पढ़ने के दौरान सक्रिय होकर अर्थ निर्मित करता चलता है।

दूसरे, मौखिक भाषा के विकास के बारे में हुआ शोध बताता है कि प्रोत्साहन-प्रेरणा प्रारूप बच्चे के भाषा सीखने के संबंध में ठीक से खुलासा नहीं करते। बच्चा भाषा को सक्रिय तौर से अंदाज़ा लगाकर, व्यवहार में लाता हुआ सीखता है। पढ़ने की प्रक्रिया के प्रारंभिक-विकास पर किया गया शोध पुष्टि करता है कि इसकी प्रक्रियाएँ उसी किस्म की हैं (टील एवं सलज़्बी, 1996)।

यदि बच्चों को ऐसे माहौल में रहने का मौका मिले जहाँ उनके इर्द-गिर्द किताबें हों तो वे लिखित भाषा के बारे में अधिक सक्रियता से अनुमान लगा कर सीखते हैं। उन्हें औपचारिक रूप से भाषा के सभी यांत्रिक पहलू सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। बच्चों के पढ़ने-लिखने के प्रारंभिक प्रयत्नों पर गौर करने से पता चलता है कि यह कैसे होता है। बच्चों की अनौपचारिक गतिविधियों, जैसे, लिखने के नाम पर लीक-लकीरें खींचने और किताब लेकर बड़ों की तरह पढ़ सकने की कोशिश करने को देखने से, उनके पढ़ने-सीखने के बारे में काफ़ी अच्छी जानकारी प्राप्त हो सकती है। समस्या यह है कि बच्चे जब भी इस तरह की कोई कोशिश करते हैं तो उनकी तुलना वयस्कों से की जाती है। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि बच्चे क्या जानते हैं तो हमें उनकी कल्पनाओं, उनके द्वारा लगाए जाने वाले अनुमानों के बारे में काफ़ी पता चलेगा।

तीसरे, पढ़ाई के कार्यात्मक पहलू भी उसके औपचारिक पहलुओं जितने ही अहम होते हैं। बच्चे भाषा सीखने और उसका उपयोग एक साथ करते हैं। पढ़ना सीखने के उद्देश्यों में आनंद और संप्रेषण दोनों शामिल हैं।

इस तरीके से शिक्षण के अर्थ

इमरजन्ट लिटरेसी पर आधारित कक्षा, रूढ़ तरीकों पर आधारित कक्षा से बहुत भिन्न होगी। यह कक्षा बच्चों को पढ़ने-लिखने के प्रति आकृष्ट करने के लिए तरह-तरह के विभिन्न अवसर प्रदान करवाएगी और इसमें विभिन्न प्रकार की लिखित सामग्री उपलब्ध होगी जिससे बच्चे अंतःक्रियाएँ (इंटररेक्ट) कर सकें। लिखित भाषा के बारे में पूर्व-कल्पना (हाइपॉथेसिस) उत्पन्न करने के लिए बच्चों को व्यापक स्तर पर विविध प्रकार की लिखित भाषा-सामग्री की ज़रूरत होती है। पढ़ और लिख सकने के बारे में पूर्व-कल्पना शुरू में पैदा नहीं हो सकती। बहुत-सी भारतीय कक्षाएँ अपने उपेक्षित, खस्ताहाल पुस्तकालयों की वजह से मात्र पाठ्यपुस्तकों पर आश्रित रहती हैं। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि परंपरागत प्रवेशिकाएँ बच्चों के लिए सार्थक और मुनासिब पाठ्यसामग्री नहीं हैं। अतः बच्चों के साहित्य में निवेश और साहित्य को उनके लिए सुलभ बनाना ज़रूरी है। जहाँ इस तरह की कुछ सामग्री उपलब्ध है भी, अकसर शिक्षक नुकसान पहुँचाने या खराब हो जाने के डर से बच्चों को इसका इस्तेमाल नहीं

करने देते। इस रवैये को बदलने की दरकार है और इस सामग्री का बच्चों की पहुँच में रहना अनिवार्य है। बच्चे पुस्तकों का वास्तव में इस्तेमाल किए बगैर उनकी सार-संभाल करना नहीं सीख सकेंगे।

बच्चों को पुस्तकालय सुलभ करवाने के अलावा, उन्हें साहित्य से परिचित करवाने के लिए शिक्षक उन्हें रोज कहानी या कुछ और पढ़कर सुना सकता है। सुनते वक्त अगर बच्चे छपी हुई कहानी पर उँगली भी फिरा सकें तो उनकी उस पाठ्यसामग्री के प्रति उत्सुकता विकसित होगी तथा वे बोले हुए और लिखे हुए शब्दों के बीच ताल्लुक बनाने लगेंगे।

दूसरे, बच्चे को सहायक वातावरण प्रदान करना जरूरी है। पूर्व-कल्पनाओं/ पूर्व-अनुमानों की कोशिश और उनकी उत्पत्ति निर्भय और खुले वातावरण में ही संभव है। हर बच्चा मौखिक भाषा के विकास के दौरान वयस्कों के व्यवहार से काफ़ी कुछ सीखता है। (कैम्बूर, 1984)। जब कोई बच्चा ठीक उनकी तरह नहीं बोल पाता तो वयस्क इस बात से परेशान नहीं होते। वे अनुमान से बोले जाने वाले सही शब्द के आसपास के शब्दों को स्वीकार कर लेते हैं। फिर भी प्रारंभिक कक्षाओं में वर्तनियों, उच्चारण की शुद्धता और सटीक पठन पर हद से ज्यादा जोर दिया जाता है। बच्चों को कोशिश करने तथा सही के निकट पहुँचने की स्वतंत्रता नहीं होती। मौखिक भाषा के विकास के दौरान घर-परिवार की परिस्थितियों से प्राप्त होने वाले फीडबैक और कक्षा में दिए जाने वाले फीडबैक के तरीकों में बुनियादी तौर पर एकदम फर्क होता है। मौखिक भाषा के विकास काल में वयस्क सर्वप्रथम बच्चे के कहने के मंतव्य को समझ कर उसका उत्तर देते हैं। उत्तर देते वक्त भी वे परंपरागत भाषा उपयोग में लाते हैं। वे बच्चे की भाषा को खारिज नहीं करते। कक्षा व्यवस्था में वयस्क साक्षरता के औपचारिक पहलुओं पर जरूरत से ज्यादा ध्यान देते हैं तथा अर्थ या मंतव्य और संप्रेषण के बच्चे के प्रयासों को नज़रअंदाज कर देते हैं नतीजतन बच्चे को सकारात्मक फीडबैक और प्रोत्साहन बमुश्किल प्राप्त हो पाता है। इस सिलसिले को बदलने की जरूरत है।

अंततः बच्चों को खंडित भाषा (जैसे- एक खास ध्वनि) में बाँधने की बजाय उन्हें एक संपूर्ण भाषा से जोड़ना होगा। केवल ध्वनियों और अक्षरों पर ध्यान एकाग्र करने के लिए अर्थ को अलग नहीं छोड़ना चाहिए। बच्चों को सिर्फ बारहखड़ी के अक्षर रटने तथा शब्दों को जोड़ने, जो न तो रुचिकर होता है और

ना ही जिसकी उनके जीवन में कोई प्रासंगिकता होती है- पर ही केंद्रित नहीं करना चाहिए जैसा कि पढ़ना सीखने के रूढ़ ढर्रे में होता है।

बच्चों को बाल-साहित्य की व्यापक, वैविध्यपूर्ण, रुचिकर दुनिया से रू-ब-रू कराने के अतिरिक्त शिक्षक 'भाषा-अनुभव प्रणाली' (लैंग्वेज एक्सपीरियंस एप्रोच) के लिए बच्चे के अनुभव तथा बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल कर सकते हैं। इसमें शिक्षक बच्चों को अपने निजी तजुर्बे सुनाने के लिए आमंत्रित करते हैं और उनके कहे को बोर्ड पर हू-ब-हू लिख देते हैं। बाद में वे इसे उन्हें पढ़कर सुनाते हैं। यहाँ लिखित भाषा अपरिचित हो सकती है पर विषयवस्तु बच्चों की सुपरिचित होती है। अतः यह उनके लिए सहायक सिद्ध होती है तथा बच्चों को अपने बोले शब्दों और उनके लिखित रूप के बीच आपसी संबंध बनाने का पर्याप्त अवसर मिलता है। वे महसूस करते हैं कि वे जो बोलते हैं उसे लिखा जा सकता है। परंपरागत पाठ्यपुस्तकों की बेमानी तथा अपरिचित विषयवस्तु से परे, जिसका इस आलेख में जिक्र किया गया है, यह तरीका ध्यान रखता है कि बच्चे लिखित भाषा को परिचित और अर्थवान रूप में देख सकें। शिक्षक विशेष अक्षरों की तरफ़ (बिना कोई अति किए) बच्चों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। तब अक्षरों का अध्ययन एक सार्थक संदर्भ में किया जाएगा, गुडमैन (1986) के अनुसार जब भाषा स्वाभाविक, उद्देश्यपूर्ण, प्रासंगिक और किसी असल घटना का हिस्सा होती है तो उसे सीखना आसान होता है। तजुर्बे की भाषा के उपयोग की पद्धति इन सब ज़रूरीयात को पूरा करती है।

निष्कर्षतः बच्चों की प्रारंभिक पढ़ाई-लिखाई के शिक्षा शास्त्र/अध्यापन कला की दृष्टि से हमें भारतीय स्कूलों की कक्षाओं में अध्ययन की मौजूदा स्थिति की पड़ताल करनी होगी। शिक्षा के औपचारिक पहलुओं पर हद से ज्यादा जोर देने या ध्यान केंद्रित करने के सिलसिले में संशोधन की दरकार है क्योंकि यह विपरीत परिणाम देने वाला है। शिक्षक प्रशिक्षण में पढ़ना और लिखना सीखने की प्रक्रियाओं को शामिल करते हुए उनको अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता है। इसके अलावा कक्षा-अभ्यासों में तब्दीली आए, अध्ययन पढ़ाई पर ध्यान देने और प्रचुर मात्रा में बाल-साहित्य के उपयोग की भी ज़रूरत है।

संदर्भ

- कैम्बोर्न, बी. 1984. लैंग्वेज लर्निंग एण्ड लिटरेसी,
ए. बटलर एवं जे. टर्बिल (सम्पा), टुवार्ड्स ए रीडिंग-बाइडिंग क्लासरूम (पृ. 5-9),
गुडमैन के. 1986. व्हाट इज होल इन होल लैंग्वेज?
पोट्समाउथ, एन. एच: हाइनमान, कुमार वे 1992. व्हाट इज वर्थ टीचिंग? नई दिल्ली
ओरियन्ट लॉन्गमैन, इन्द्रधनुष स्वरमाला (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष नहीं दिया गया है)।
रानी आर. 1991. हिंदी रीडर, भाग-1 भारती भवन, पटना।
सिन्हा एस. 2001. एक्वायरिंग लिटरेसी इन स्कूल्स, सेमीनार, 493, 38-421
टील, डब्ल्यू एच. एवं सल्वी, ई. 1996. इंट्रोडक्शन-इमरजन्ट लिटरेसी एज ए पर्सपेक्टिव
फॉर एग्जामिनिंग हाउ यंग चिल्ड्रन।



बच्चों में पढ़ने के प्रति नफ़रत पैदा करना

जॉन होल्ट*

जब मैं कॉलोरैडो रॉकी माउंटेन स्कूल में अँग्रेज़ी पढ़ाता था तो मैं छात्रों से उन. के होमवर्क के बारे में वही प्रश्न पूछता था जो सामान्यतः अँग्रेज़ी पढ़ाने वाले शिक्षक पूछते हैं - ऐसे प्रश्न जिनसे छात्र मेरे द्वारा चुनी गई चीज़ों को समझें। छात्र इशारों से मुझसे संकेत निकलवाने का प्रयास करते। हम एक प्रकार का खेल खेलते। किसी पुस्तक के बारे में छात्रों के विचारों को मैं कभी जानने की कोशिश नहीं करता था।

मैं छात्रों से शब्दों की कवायद कराता और उन्हें पहेलियाँ बूझने को कहता। मैं उनसे कहता कि जब कभी उन्हें कोई नया शब्द नज़र आए तो उन्हें तुरंत शब्दकोश में उसका अर्थ देखना चाहिए। मैंने उनके लिए शब्दों के कुछ परीक्षण बनाए थे जिनमें वे शब्दों के उपयोग को समझने के लिए अपनी पुस्तकों की सहायता ले सकते थे। परंतु अब जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मुझे अपने द्वारा बनाए परीक्षणों और तरीकों की बेवकूफी का पता चलता है।

मुझे अँग्रेज़ी पढ़ाने के पारंपरिक तरीकों की सीमाओं के बारे में सबसे पहले मेरी बहन ने सोचने के लिए बाध्य किया। उनका बेटा सातवीं कक्षा में था और एक अच्छे पब्लिक स्कूल में पढ़ता था। शिक्षक ने उससे कूपर की पुस्तक **द डियरस्लेयर** पढ़ने को कहा। पुस्तक का चयन ही गलत था क्योंकि उसमें प्रकृति और मनुष्य दोनों का वर्णन काफ़ी सतही, अशुद्ध और भावनात्मक था। वैसे भी कूपर की शैली और भाषा काफ़ी कठिन है। सबसे खराब बात यह थी कि शिक्षक बच्चों से इस पुस्तक का अतिसूक्ष्म अध्ययन करवा रहा था। शिक्षक बच्चों से परिभाषाएँ रटवा रहा था और प्रत्येक कठिन शब्द का उद्गम खोजने को कह रहा था। इस तरह के बहुत सारे शब्द थे। हरेक अध्याय के बाद प्रश्न पूछे जाते थे जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि बच्चों को पाठ 'समझ' में आ गया है।

उस समय परंपरावादी होने के नाते मैं अपनी बहन की टिप्पणियों के विरोध में अपने शिक्षक मित्र का ही पक्ष ले रहा था। धीरे-धीरे यह विवाद गरमाया।

* अनु., अरविंद गुप्ता, **एकलव्य**, भोपाल द्वारा प्रकाशित जॉन होल्ट की पुस्तक *The Under Achieving School* का हिंदी अनुवाद 'असफल स्कूल' से साभार

बच्चे जो भी पढ़ें वे उसे समझें, यह सुनिश्चित करना क्या गलत था? मेरी बहन ने बताया कि इस कक्षा से पहले उनके बेटे को पुस्तकें पढ़ने से अथाह प्रेम था और वह खुद बहुत कुछ पढ़ता था। परंतु अब उसने पढ़ना ही बंद कर दिया था। (और इसके कई वर्षों बाद तक भी उसने दुबारा पढ़ना शुरू नहीं किया।)

मैं फिर भी अपनी बात पर अड़ा रहा। अगर बच्चों को शब्दों के अर्थ ही नहीं पता होंगे तो वे पढ़ते समय उनको कैसे समझेंगे? मेरी बहन ने कहा, “बेवकूफों जैसी बातें मत करो। जब तुम छोटे थे तब तुम्हारी शब्दावली काफ़ी वृहत् थी। तुम हमेशा वयस्कों की पुस्तकें ही पढ़ते थे। तुमने बचपन में क्या कभी शब्दकोश उठाकर देखा था?” उन्होंने सही ही कहा था। मैंने कभी शब्दकोश नहीं देखा था। आज भी मुझे उसकी ज़रूरत नहीं पड़ती। अपने पूरे जीवन में मैंने शब्दकोश में पचास से अधिक शब्दों के मायने नहीं देखे होंगे, शायद उससे भी कम।

उसके बाद से मैंने इस विषय पर बहुत से शिक्षकों के साथ चर्चा की है। इस बात को मैंने कई बार दोहराया है, “परीक्षणों के अनुसार आप जैसे पढ़े-लिखे साक्षर लोग लगभग पच्चीस हजार शब्द जानते हैं। उनमें से आपने कितनों को शब्दकोश में खोजा है?” शिक्षक इसे सुनकर चौंक जाते हैं। कुछ ने शायद एक हजार या उससे कम शब्दों को शब्दकोश में खोजा होगा। उन्होंने बाकी शब्द कैसे सीखे? जैसे उन्होंने बोलना सीखा, उसी प्रकार उन्होंने उन शब्दों को सीखा। वे शब्दों को अलग-अलग संदर्भों में बार-बार देखते और अंत में पूरे संदर्भ में उनके अर्थ को समझ जाते।

अँग्रेजी के शिक्षक समझ पर इतना बल देते हैं यह एक दुर्भाग्य की बात है। बच्चे जो कुछ भी पढ़ें वो सब उन्हें समझ में आए ही, यह क्यों ज़रूरी है? यह किसी के भी लिए क्यों ज़रूरी है? क्या कभी किसी के साथ ऐसा हुआ है? मेरे साथ न तो कभी ऐसा हुआ और न ही मैंने कभी ऐसा किया है। मैंने हमेशा ऐसी पुस्तकें पढ़ीं जिन्हें शिक्षक ‘कठिन’ करार देते। इन पुस्तकों में बहुत से ऐसे शब्द थे जिन्हें मैं नहीं जानता था इसीलिए मैं एक अच्छा पाठक बना। दस साल की उम्र में ही मैं डी. आर्टगनन की कहानियाँ पढ़ने और उनका आनंद लेने लगा था। उस समय तक मुझे यह नहीं पता था कि फ्रांस और इंग्लैंड के बीच युद्ध क्यों हुआ, या फ्रांसीसी न्यायालयों में कौन किससे लड़ रहा था, या फिर मस्केटियर क्यों कार्डिनल रिचलू के लोगों से झगड़ते रहते थे परंतु ये बातें मालूम न होने से मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। मुझे यह भी नहीं पता था

कि कार्डिनल कौन था। मैं सिर्फ़ इतना जानता था कि वह एक खतरनाक और शक्तिशाली आदमी था और मेरे मित्रों को उससे डर लगता था। बस, इतना भर जानना ही मेरे लिए काफ़ी था।

इतना सब कहने के बाद मैं सोचता हूँ कि घर या कक्षा में एक बड़ा, विस्तृत शब्दकोश होना एक अच्छी बात है। अगर कोई आपको बाध्य न करे तो किसी अन्य किताब के पन्ने पलटने में आपको इतना मज़ा नहीं आएगा। बच्चों को उनकी आयु के अनुसार बड़े शब्दकोश में बहुत-सी रोचक और अच्छी बातें मिलेंगी। वे उसमें मज़ेदार उच्चारण वाले शब्द खोज सकते हैं या वे उन शब्दों को ढूँढ़ सकते हैं जिन्हें कक्षा में किसी ने कभी सुना ही न हो और जो उन्हें पसंद हों या वे अपनी पसंद के लंबे या फिर निषेध शब्दों को खोज सकते हैं जिसमें उन्हें सबसे ज़्यादा मज़ा आएगा। एक विशेष उम्र में शिक्षकों एवं पालकों की थोड़ी-सी सहायता से बच्चे शब्दों के उद्गम और समय के साथ उनके बदलते अर्थ के बारे में जान सकते हैं। शब्दों को अपने मज़े के लिए खोजना एक बात है। परंतु अगर आपको पढ़ते समय बार-बार शब्दकोश उठाना पड़े, क्योंकि ऐसा नहीं करने से आपको शिक्षक परेशान करेगा, तो वह एक बिल्कुल अलग बात होगी।

अपनी बहन के साथ हुए विवाद के दो साल बाद पाँचवीं कक्षा को पढ़ते समय मैं पढ़ने के बारे में गंभीरता से सोचने लगा। मेरी कक्षा के बच्चों को एक कार्ड पर उनके द्वारा पढ़ी प्रत्येक पुस्तक और लेखक का नाम और उसके सार को सिर्फ़ एक वाक्य में लिखना होता था। मुझे किसी प्रतिस्पर्द्धा का आयोजन नहीं करना था, यह देखने के लिए कि सबसे ज़्यादा किताबें कौन पढ़ रहा था। इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धाओं से बच्चों को सिर्फ़ धोखा देने की शिक्षा मिलती है। बच्चे क्या पढ़ रहे हैं, मैं सिर्फ़ यह पता करना चाहता था। कुछ समय पश्चात् यह स्पष्ट हो गया कि बहुत बुद्धिमान बच्चे भी, जो पढ़े-लिखे और साहित्यिक परिवारों से आए थे, बहुत कम पुस्तकें पढ़ते थे और पढ़ने से उन्हें गहरी घृणा थी। इसका क्या कारण हो सकता था?

इस समय की अपनी सोच को मैंने 'हाऊ चिल्ड्रन फेल' नाम की पुस्तक में लिखा है। उन दिनों मुझे यह महसूस होने लगा था कि अधिकांश बच्चों के लिए स्कूल एक खतरनाक जगह होती है और स्कूल में बच्चे इस खतरे से बचने का यथासंभव प्रयास करते हैं। अब मुझे साफ़ दिखाई देने लगा कि स्कूल में पुस्तकें भी एक बहुत खतरनाक चीज़ होती हैं।

हम स्कूल में शुरू से ही पुस्तकों और उनके पढ़ने को फेल करने और नीचा दिखाने का एक माध्यम बना देते हैं। जब बच्चे छोटे होते हैं तब हम उनसे जोर-जोर से पढ़ने को कहते हैं ताकि हमें पता चल सके कि वे सभी शब्दों को समझ रहे हैं या नहीं। इसका मतलब होता है कि बच्चों को कोई शब्द न मालूम होने पर वे पूरी कक्षा के समक्ष गलती करेंगे। उन्हें अपनी गलती का तत्काल पता चल जाएगा। गलती करने पर शायद कुछ अन्य बच्चे अपने हाथ हिलाकर “ओह, ओह” की आवाजें निकालने लगें। हो सकता है कि कुछ हँसें, एक-दूसरे को कोहनी मारें या फिर अपना मुँह बनाएँ। शायद शिक्षक पूछें, “क्या तुम्हें अच्छी तरह पता है?” या फिर वह किसी और से उसके बारे में पूछें और अगर शिक्षक कुछ दयालु हुआ तो शायद उसके चेहरे पर एक मीठी, उदास मुस्कान प्रकट हो - जो किसी संवेदनशील बच्चे के लिए कठोर सजा साबित हो सकती है। जो भी हो, इतना अवश्य होगा कि जिस बच्चे ने गलती की है उसे अपनी गलती का पता चल जाएगा जिससे वह अपने आपको मूर्ख, बेवकूफ़ और अपमानित महसूस करेगा। अगर हम उसकी जगह होते तो हम भी वैसा ही महसूस करते।

इससे बहुत से बच्चे जल्दी ही पुस्तक पढ़ने का संबंध गलतियों, सजा और अपमान से जोड़ने लगते हैं। यह शायद हमें अच्छा न लगे पर होता असल में ऐसा ही है। मार्क ट्वेन ने एक बार कहा था कि गर्म तवे पर एक बार बैठने के बाद बिल्ली दुबारा कभी ठंडे तवे पर भी पाँव नहीं रखेगी। यह बात जितनी बिल्लियों के लिए सही है उतनी ही बच्चों के लिए भी है। अगर बच्चे ‘गर्म’ पुस्तकों पर कुछ बार बैठते हैं और अगर पुस्तकों के कारण उन्हें अपमानित होना और दुख झेलना पड़ता है तो वे पुस्तकों को दूर से ही सलाम करने का निश्चय कर लेंगे। पाँचवीं कक्षा के बच्चों को चार साल पढ़ाने के बाद इस सिद्धांत की सच्चाई में मेरी आस्था बढ़ गई। मेरी नई कक्षा में ऐसे बहुत से बच्चे थे जो स्कूल के काम और पढ़ने में बहुत परेशानी महसूस करते थे। मैंने जी-जान लगाकर पुस्तकों के प्रति उनके भय और घृणा को दूर करने और उन्हें अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित करने की कोशिश की।

एक दिन स्कूल शुरू होने के तुरंत बाद मैंने उनसे कहा, “मैं चाहूँगा कि इस वर्ष तुम अधिक से अधिक पुस्तकें पढ़ो, पर तुम उन्हें केवल अपने आनंद के लिए ही पढ़ो। तुम्हें पुस्तकें समझ में आईं या नहीं, इसके बारे में तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछेगा। तुम्हें पुस्तक समझ में आए और तुम उसे अपने मजे के लिए पढ़ना

चाहो, बस यही मैं चाहता हूँ। मैं तुमसे किसी शब्द का अर्थ भी नहीं पूछूँगा।” अंत में, मैंने उनसे कहा, “मैं यह नहीं चाहता कि तुम्हें ऐसा लगे क्योंकि तुमने किसी पुस्तक को शुरू किया है तो इसका मतलब यह है कि तुम्हें उसे खत्म ही करना है। तुम पुस्तक के पहले तीस-चालीस पन्ने पढ़कर उसका जायज़ा लो। उसके बाद अगर तुम्हें पुस्तक के पात्र या पुस्तक पसंद न आए तो उसे बंद करके रख दो और दूसरी पुस्तक उठाकर पढ़ो। जब तक तुम्हें पुस्तक में मज़ा आए तब तक। मुझे उसके कठिन या सरल, लंबी या छोटी होने से कुछ फ़र्क नहीं पड़ता। मैं इस सबके बारे में तुम्हारे माता-पिता को भी एक पत्र लिख रहा हूँ ताकि वे तुमसे पुस्तकों के बारे में बेकार के सवाल-जवाब न करें।”

बच्चे स्तब्ध और शांत बैठे रहे। भला कभी कोई शिक्षक ऐसी बात करेगा? एक लड़की हमारे पास हाल ही में एक दूसरे स्कूल से आई थी। वहाँ उस बच्ची को बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ी थीं। वह एक बेहद रोचक, जिंदादिल और बुद्धिमान लड़की थी। वह बहुत देर तक मुझे टकटकी लगाए देखती रही और फिर उसने धीरे से और गंभीरता से मुझसे पूछा, “मिस्टर होल्ट, क्या आपने जो कहा है उसमें सच्चाई है?” मैंने भी गंभीरता से उत्तर दिया, “मेरा हरेक शब्द सच है।”

ज़ाहिर तौर पर उस लड़की ने मेरी बात पर विश्वास करने का निर्णय लिया। उसने सबसे पहले *डॉक्टर सीऊस्स की हाऊ द ग्रिंच स्ओल क्रिस्मस* नामक किताब पढ़ी। यह किताब तीसरी के बच्चों के लिए भी कठिन नहीं है। कुछ समय तक वह इसी स्तर की अन्य पुस्तकें पढ़ती रही। इस दौरान शायद वह अपनी कुछ उन उलझनों से मुक्त हो रही थी जिन्हें उसके पूर्व शिक्षकों ने पैदा किया था। उसे ‘ऊँची कक्षा’ के स्तर तक लाने के लिए इन शिक्षकों ने उसे अपनी कठिनाइयों को सुलझाने का समय ही नहीं दिया था। मेरी कक्षा में छः हफ़्ते बिताने के बाद उसके साथ मेरी अच्छी दोस्ती हो गई क्योंकि उसकी पढ़ने और घोड़ों दोनों में गहरी रुचि थी। इसलिए मैंने उसे *नेशनल वेल्वेट* नाम की पुस्तक पढ़ने का सुझाव दिया। मैंने यह सुझाव बहुत झिझक और सावधानी से दिया। मैंने पुस्तक की संक्षिप्त कहानी उसे बताई। कहानी एक छोटी लड़की के बारे में थी जिसे घोड़ों से प्यार था और उन पर सवारी करना पसंद था। मैंने उस लड़की से यह भी कहा कि अगर उसे कहानी पसंद न आए तो वह बेशक किताब को न पढ़े। उसने कोशिश की। किताब उसके पढ़ने के स्तर से काफ़ी कठिन थी, फिर भी उसने उसको पूरा पढ़ा और उसमें उसे बहुत मज़ा आया।

बच्चों में पढ़ने के प्रति नफ़रत पैदा करना

बसंत के दौरान उसने मुझे एकदम आश्चर्य में डाल दिया। एक दिन छुट्टी के पीरियड में वह अपने डेस्क पर बैठी पढ़ रही थी। उस किताब में चित्रों की एक झलक देखकर मुझे उस पुस्तक के बारे में कुछ अंदाज़ा लगा। “ऐसा नहीं हो सकता” मैंने खुद से कहा और फिर पास जाकर मैंने किताब को करीब से देखा। मेरा अंदाज़ा सही था। वह **मोबी डिक** का वह संस्करण पढ़ रही थी जिसमें रौकवेल केन्ट ने विशेष वुडकटों द्वारा चित्र बनाए थे। जब मैं उस लड़की की डेस्क के पास आया तो उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा। मैंने पूछा, “क्या तुम वाकई इस किताब को पढ़ रही हो?” उसने “हाँ” में उत्तर दिया। “क्या तुम्हें किताब पसंद आई?” “हाँ, बड़ी रोचक है।” उसने जवाब दिया। मैंने पूछा, “क्या तुम्हें किताब के कुछ अंश कठिन नहीं लगते?” उसने उत्तर दिया, “हाँ, मैं उन अंशों को छोड़कर आगे के अच्छे हिस्से पर चली जाती हूँ।” इसी प्रकार पढ़ना चाहिए आनंद, खुशी और रोमांच के लिए। पर दुर्भाग्य से स्कूलों में ऐसा नहीं होता है। पढ़ने के लिए कुछ ढूँढ़ो, उसमें डूबो, अच्छे अंशों को पढ़ो, खराब हिस्सों को छोड़ दो और पुस्तक से जितना संभव है हासिल करो और फिर दूसरी किताब ले आओ। परंतु स्कूलों की मान्यता इससे कितनी उलट है। हम पुस्तक को निचोड़-निचोड़ कर उसकी समझ का अर्क बच्चों को पिलाना चाहते हैं।

जिन शिक्षकों को इसमें मज़ा आता है और जो इसे बड़े चाव से करते हैं, उनके लिए पुस्तकों को जोर से पढ़ना एक अच्छी बात है। मेरी समझ में आया है कि पाँचवीं के बच्चों को ही नहीं, इसमें नौवीं और ग्यारहवीं के बच्चों को भी बड़ा मज़ा आता है। जैक लंडन की लिखी ‘टू बिल्ड ए फायर’ बोलकर पढ़ने के लिए एक बहुत अच्छी कहानी है। इसी तरह भूतों-प्रेतों की कहानियाँ भी : डब्लू. एफ. हारवे की ‘ऑगस्ट हीट’ और साकी (एच.एच. मुनरो) की ‘द मंकीज पौ’ शायद सबसे अच्छी है। शर्ली जैकसन की कहानी ‘द लॉटरी’ भी ज़बरदस्त है। इससे बाद में चर्चा के लिए कई तरह के प्रश्न उठेंगे। बच्चों ने क्योंकि विलियम गोल्डिंग की पुस्तक ‘लॉर्ड ऑफ द फ्लाइज़’ को टेलीविजन पर देखा था और उसमें उन्हें मज़ा आया था, इसलिए मैंने उसके एक-दो अध्याय उनको पढ़कर सुनाने का मन बनाया परंतु बच्चों ने मुझे पूरी पुस्तक को पढ़ने के लिए मजबूर किया।

पाँचवीं की जिन कक्षाओं को पहले मैं पढ़ाता था उसके बच्चे तीव्र बुद्धि वाले थे, सुशिक्षित परिवारों से संबंध रखते थे और ऐसा लगता था कि वे स्कूल में सफल होंगे परंतु इनमें से अधिकांश बच्चों को अपनी बात को कहकर या

लिखकर अभिव्यक्त करना बहुत मुश्किल लगता था। यह हैरान करने वाली बात थी। मैं पाँच वर्ष के ऐसे कई बच्चों को जानता था जो स्कूलों में पाँचवीं कक्षा के ज्यादातर बच्चों से भाषा में कहीं अधिक सुस्पष्ट थे परंतु कुछ बोलने के लिए कहने पर ये बच्चे झिझकने, शरमाने लगते और कुछ तो साफ़ इंकार कर देते। लिखने के लिए कहने पर वे कई मिनटों तक बैठे कागज़ को सिर्फ़ निहारते रहते थे। उनमें से किसी के लिए भी उनकी रुचि और उनके द्वारा चुने विषयों पर आधा पन्ना भी लिख पाना एक दुश्वार काम था।

एकदम निराश होने के बाद मैंने एक तरकीब खोज निकाली और उसको नाम दिया 'निबंध दौड़'। मैंने कक्षा को दो टीमों में बाँट दिया और उन्हें समझाया कि मेरे शुरू कहते ही वे अपने-अपने कागज़ों पर कुछ भी लिखना शुरू कर दें। वे अपनी मर्जी से किसी भी चीज़ के बारे में लिखने के लिए स्वतंत्र थे परंतु वह किसी चीज़ के बारे में होना चाहिए। वे बार-बार सिर्फ़ 'कुत्ता, कुत्ता, कुत्ता, कुत्ता' नहीं लिख सकते थे। वे कोई सच्ची कहानी, लोगों या स्थानों का वर्णन, घटनाएँ, इच्छाएँ, सपने - उनका जो जी चाहे लिख सकते थे। हिज्जे ठीक ही हों, इसकी फ़िक्र भी उन्हें नहीं करनी थी। जब मैं 'बंद' कहूँ तो सबको लिखाई तत्काल बंद करके अपने लिखे हुए निबंध के शब्दों को गिनना था। जिस टीम के सदस्य सबसे अधिक शब्द लिख पाएँगे वही टीम 'निबंध दौड़' में विजयी होगी।

इसमें मुझे काफ़ी सफलता मिली। इसके कई कारण भी थे। पहला आश्चर्य तो यह था कि जिन दो बच्चों ने बार-बार सबसे अधिक शब्द लिखे उनकी गिनती कक्षा के सबसे असफल बच्चों में होती थी। वे तेज़ थे परंतु स्कूल में उन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। दोनों लिखते समय हिज्जों में ढेरों गलतियाँ करते थे जिसके डर से उनकी लिखाई धीमी पढ़ जाती थी और हिज्जे भी ठीक नहीं होते थे। जब वे इस भय से मुक्त हो गए तो उन्होंने अपने अंदर छिपी प्रतिभाओं को बाहर निकाला। उन दोनों में से छोटा लड़का काफ़ी उत्साही था पर बहुत चिंतित भी रहता था। वह लंबी-लंबी रोमांचक कहानियाँ लिखता था जिनमें मैं एक प्रमुख पात्र होता था, जैसे - 'जिस दिन मिस्टर होल्ट गड्डे में गिरे' या 'जिस दिन मिस्टर होल्ट कुचले गए' आदि। ये कहानियाँ बेहद मजेदार होती थीं और जब मैं कक्षा में इन्हें जोर से पढ़ता तो सब बच्चों को सुनकर बड़ा मज़ा आता। एक दिन मैंने बच्चों को 'निबंध दौड़' लिखने के लिए एक विषय सुझाने की बात की। उन्हें यह सुझाव बिल्कुल पसंद नहीं आया।

बच्चों में पढ़ने के प्रति नफ़रत पैदा करना

पहले ज़रा विषय तो सुन लो मैंने कहा, विषय है “जिस दिन स्कूल जल कर राख हुआ।”

बच्चे खुशी से चिल्लाने लगे और तत्काल काम पर लग गए। वे बीस मिनटों तक लगातार लिखते रहे और लिखते समय खुशी से हँसते रहे। सभी के निबंध लगभग एक जैसे थे। निबंधों में सभी बच्चे स्कूल की जलती इमारत के सामने नाच रहे थे और पुस्तकों को आग में झोंक रहे थे। वे मुझे और अन्य शिक्षकों को लगातार आग से बाहर निकलने से रोक रहे थे। हमारी पहली ‘निबंध दौड़’ में बच्चों ने औसतन दस शब्द प्रति मिनट लिखे पर कुछ महीनों के बाद वे बीस शब्द प्रति मिनट के हिसाब से लिखने लगे। सबसे धीमे बच्चों में से कुछ के काम में तीन गुना बढ़ोतरी हुई। सबसे धीमा बच्चा भी जो दरअसल कक्षा का सबसे तेज़ छात्र था, पंद्रह शब्द प्रति मिनट की गति से लिखने लगा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि सभी बच्चों को ‘निबंध दौड़’ में आनंद आ रहा था और वे रोचक बातें लिख रहे थे।

कुछ समय बाद मैंने पढ़ा कि प्रोफेसर एस० आई० हायाकावा ने नए छात्रों को अँग्रेज़ी पढ़ाने का इससे भी बेहतर तरीका ईजाद किया था। हरेक दिन वे अपनी कक्षा में छात्रों से बिना रुके आधे घण्टे तक लिखने को कहते थे। छात्र किसी भी विषय पर लिख सकते थे, ज़रूरी शर्त थी बिना रुके लिखना। अगर कभी वे बीच में रुकते तो उन्हें अपने आखिरी वाक्य की तब तक नकल उतारनी होती थी जब तक उनके दिमाग में कोई नया विचार नहीं आता। अकसर वाक्य की नकल करने से पहले ही उन्हें नया विचार सूझ जाता। मैं भी इसी तकनीक का इस्तेमाल करता हूँ और मैंने इस प्रकार के लेखन को ‘नॉन-स्टॉप’ का नाम दिया है। कभी-कभी मैं छात्रों को ‘नॉन-स्टॉप’ का विषय देता हूँ पर ज़्यादातर मैं उन्हें उनकी मर्जी के विषय चुनने देता हूँ। आजकल (1969 की सर्दियों में) बर्कले में मेरे छात्र और मैं भी रोज़ाना दस से पंद्रह मिनट तक इसी प्रकार का लेखन करते हैं। अभ्यास के दौरान हमारे दिमाग में विचार इतनी तेज़ी से आते हैं कि हमारे लिए उन्हें लिख पाना मुश्किल हो जाता है। कुछ छात्रों को इस प्रकार के लेखन में बड़ा आनंद आता है। कभी-कभी मैं उन्हें अपने लिखे हुए शब्दों को खुद गिनने को कहता हूँ। यह सिर्फ़ उनकी जानकारी के लिए होता है, मुझे बताने के लिए नहीं। कभी-कभी बच्चों को अपने लेख मुझे देने पड़ते हैं पर अधिकतर यह निजी लेखन उनके खुद के लिए ही होता है।

यह निजी लेखन काफ़ी उपयोगी सिद्ध हुआ है। पहले तो अँग्रेज़ी की किसी भी कक्षा में - खासतौर पर किसी भी बड़ी कक्षा में - बच्चों को यदि केवल उतना ही लिखना होता है जितना शिक्षक पढ़कर जाँच पाए, तो वे बहुत कम लिखते हैं। इसका एक ही इलाज है। बच्चे इतना अधिक लिखें जिसे शिक्षक पढ़ ही न पाएँ। दूसरा, जब बच्चे खुद अपने लिए लिखेंगे तो वे ऐसी बहुत सारी बातें लिखेंगे जिन्हें वे किसी को पढ़वाना नहीं चाहेंगे। बच्चे ऐसा तब करते हैं जब वे समझ जाते हैं कि यह लेखन उनका निजी लेखन ही रहेगा, शिक्षक उसे पढ़ेगा नहीं। (ऐसा होने में थोड़ा समय लगता है।) इस चीज़ का महत्व है क्योंकि इससे न केवल वे अपने मन की भड़ास ही निकाल पाते हैं बल्कि वे अच्छा लिखना सीख पाते हैं। यह भी मुमकिन है कि जब वे कोई ऐसी बात लिखें जो उनके लिए महत्वपूर्ण हो तो वे अपने लेखन पर ज़्यादा ध्यान देंगे।

कुछ अँग्रेज़ी शिक्षकों के अनुसार छात्रों के लिए निजी लेखन तभी उपयोगी सिद्ध होता है जब उसे शिक्षक जाँचें। मैं कई कारणों से इस बात से असहमत हूँ। पहले तो अधिकांश छात्र, विशेषकर गरीब छात्र, जाँचे गए कार्य को कभी पढ़ते ही नहीं हैं क्योंकि ऐसा करना उबाऊ और दुखदाई होता है। दूसरा, जाँचे हुए कार्य को पढ़ने से भी उन्हें कोई मदद नहीं मिलती है और वे आगे के अपने लेखन में शिक्षक के सुझावों का समावेश नहीं करते हैं। यह तभी सच होता है जब छात्रों को शिक्षक की बातों पर विश्वास हो। तीसरी बात सबसे महत्वपूर्ण है। हम लिखकर ही सही लेखन सीखते हैं, अन्य लोगों के लेखन संबंधी विचारों को पढ़कर नहीं। अगर छात्रों को किसी चीज़ की सख़्त ज़रूरत है तो वह लिखने का अभ्यास करता है, खासकर उन चीज़ों के विषय में जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझता है। अपने महत्वपूर्ण विचारों को लिखने से छात्रों को संतोष मिलेगा और वे इन्हें बहुत प्रभावशाली और स्पष्ट शब्दों में लिखने में रुचि लेंगे।

अँग्रेज़ी और अन्य भाषाओं के शिक्षक अपना बहुत-सा कीमती समय और ऊर्जा हिज्जों में लगाते हैं। आमतौर पर यह व्यर्थ का काम है। इससे कुछ लाभ नहीं, उलटे नुकसान ही होता है। हमें अपने आपसे यह प्रश्न पूछना चाहिए, “लोग सही हिज्जे किस प्रकार लिख पाते हैं? जब उन्हें किसी शब्द के सही हिज्जे नहीं मालूम होते हैं तो वे क्या करते हैं?” मैंने यह प्रश्न उन तमाम लोगों से पूछा है जो हिज्जों में अच्छे हैं। हरेक से मुझे एक जैसा ही उत्तर मिलता है। वे तत्काल शब्दकोश को नहीं पलटते हैं और न ही वे नियमों को याद करने की कोशिश

करते हैं। वे उस शब्द को कई अलग-अलग तरीकों से लिखते हैं, उन्हें सावधानी से देखते हैं और उनमें से उस शब्द को चुन लेते हैं जिसके हिज्जे बाकियों से ज्यादा सही लग रहे होते हैं। अक्सर वे सही होते हैं। हिज्जे लिखने में कुशल लोगों को पता होता है कि शब्द कैसे दिखते हैं। यहाँ तक कि वे उन्हें अपनी माँसपेशियों में महसूस तक कर सकते हैं। शब्दों के बिंब उनके मस्तिष्क में अंकित होते हैं और वे उन बिंबों पर विश्वास करते हैं। बच्चे को हिज्जे सिखाते समय हम उनमें इस प्रकार की कुशलताएँ विकसित नहीं करते, उलटा उन्हें नष्ट करते हैं या उनके विकास को रोकते हैं।

सबसे पहली और सबसे बुरी बात जो हम करते हैं वह यह है कि हम बच्चों में हिज्जों के बारे में चिंता पैदा कर देते हैं। किसी शब्द की गलत लिखाई को हम एक अपराध मानते हैं और गलती करने वाले को भारी सजा देते हैं। बहुत से शिक्षक बच्चों में 'वर्तनी के प्रति चेतना' जगाने की बात करते हैं। वे छात्रों द्वारा लिखे सुंदर निबंधों में हिज्जों की चंद गलतियों के कारण उन्हें फेल कर देते हैं। इस तरीके से उन्हें खुद ही हार का सामना करना पड़ता है। चिंता की अवस्था में हमारी समझदारी और सुध मारी जाती है। हरेक व्यक्ति यह जानता है कि भावनात्मक दबाव में सरल से सरल चीजों को याद करना भी बहुत मुश्किल होता है। उस समय भरसक प्रयासों के बावजूद चीजों को खोजना कठिन होता है। जब हम बहुत चिंतित होते हैं तब हम अपने मस्तिष्क द्वारा भेजे संदेशों पर भी विश्वास नहीं करते। बहुत से बच्चे हिज्जों की गलतियाँ इसलिए करते हैं क्योंकि वे अपने अनुमान के सही होने के बावजूद उस पर यकीन नहीं करते। मैंने अक्सर बच्चों के लेखों में पाया है कि वे पहले शब्द को सही लिखते हैं और फिर उसे काटकर गलती करते हैं।

कुछ ऐसी तरकीबें हैं जिनसे बच्चे अपने मस्तिष्क में शब्दों के ज्यादा स्पष्ट बिंब बना सकते हैं। कुछ शिक्षक इनका उपयोग भी करते होंगे। एक तरीका है हवा में लिखना, यानी शब्द को उँगली से हवा में 'लिखना' और उसके बिंब को 'देखना'। मैंने पाँचवीं के बच्चों के साथ हवा में या फिर मेज की सतह पर जहाँ उँगली कोई छाप नहीं छोड़ती, लिखाई का परीक्षण किया। अधिकांश बच्चे इससे बहुत उत्साहित हुए। मुझे अभी भी उनकी कुछ बातें याद हैं, "वास्तव में तो वहाँ कुछ भी नहीं है, फिर भी मुझे दिखाई दे रहा है।" यह जादू जैसा लगता था। जब मैं छोटा था तो इस प्रकार हवा में लिखना बहुत पसंद था। इसमें कोई

मेहनत नहीं लगती थी, खूब मज़ा आता था और संतोष मिलता था। मैं हवा में “पैसा, पैसा, पैसा” लिखा करता था, इसलिए नहीं क्योंकि मुझे पैसे चाहिए होते थे बल्कि इसलिए क्योंकि मुझे इस शब्द की लिखाई में मज़ा आता था।

एक और तरीका है जो बच्चों को अपने मस्तिष्क में शब्दों के स्पष्ट बिंब बनाने में सहायक हो सकता है। इसमें बच्चे बहुत तेज़ी से शब्दों या चीज़ों को देखते हैं। इसके लिए एक मशीन भी है - टैचिस्टोस्कोप परंतु इस मशीन के बहुत महंगा होने के कारण बहुत से बच्चे इसका उपयोग कभी नहीं कर पाएँगे। कुछ तीन इंच चौड़े और पाँच इंच लंबे एवं चार इंच चौड़े और आठ इंच लंबे फाइल कार्डों द्वारा इस मशीन के प्रभाव को पैदा किया जा सकता है। आप छोटे कार्डों पर बच्चों के देखने के लिए शब्द लिखें या चित्र बनाएँ। आप एक बड़े कार्ड को छोटे कार्ड के ऊपर रखें, उसे एक क्षण के लिए झटके से हटाएँ और फिर छोटे कार्ड को वापस उससे छिपाएँ। इस प्रकार आप मुफ़्त का टैचिस्टोस्कोप बना पाएँगे जिससे बच्चा खुद काम कर सकेगा।

एक बार पहली कक्षा को पढ़ाते हुए मुझे लगा कि वे भी मेरे पाँचवीं के छात्रों की तरह ही, बिना रुके, मुक्त, नॉन-स्टॉप लेखन का आनंद लें। दोपहर के भोजन अवकाश के चालीस मिनट पहले मैंने उनसे कागज़ पर पेंसिल से अपनी मर्जी से कुछ भी लिखने को कहा। उन्हें यह बात पसंद आई परंतु तभी एक बच्चे ने चिंता भाव में मुझसे पूछा, “अगर हम सही तरीके से किसी शब्द को लिख न पाएँ, तो?” “उसकी बिल्कुल फ़िक्र न करना” मैंने कहा, “तुमसे जितना अच्छा बन पाए वैसा लिखना।” कमरे में एकदम शांति छा गई। मुझे बच्चों के चिंतित चेहरे और स्थिर पेंसिलें ही दिखाई दीं। स्पष्ट था कि यह सही तरीका नहीं था। इसलिए मैंने कहा, “अच्छा, मैं बताता हूँ कि तुम्हें क्या करना है। जब भी तुम्हें कोई शब्द लिखने में दिक्कत हो तो तुम मुझे बताना और मैं उसे ब्लैकबोर्ड पर लिख दूँगा।”

इससे बच्चों को बहुत सात्वना मिली और वे काम में लग गए। जल्दी ही बच्चे शब्दों को ब्लैकबोर्ड पर लिखने का आग्रह करने लगे। मैं एक शब्द लिखता, इतनी देर में कोई दूसरा पूछ बैठता। भोजन के अवकाश तक लगभग पूरा ब्लैकबोर्ड शब्दों से भर चुका था। रोचक बात यह थी कि बच्चों द्वारा पूछे गए अधिकांश शब्द उनकी पुस्तकों या कॉपियों में लिखे शब्दों से कहीं अधिक लंबे और कठिन थे। शब्दों के हिज्जों से मुक्ति पाने के बाद बच्चे बहुत कठिन और रोचक

शब्दों का भी उपयोग करने के लिए लालायित थे। अगले दिन स्कूल शुरू होने के समय तक ब्लैकबोर्ड पर वे शब्द लिखे पड़े थे। उनको मिटाने से पहले मैंने बच्चों से कहा, “देखो, मुझे ब्लैकबोर्ड पर लिखे शब्दों को अब मिटाना ही होगा परंतु उन्हें मिटाने से पहले मैं केवल उत्सुकता के कारण यह जानना चाहूँगा कि क्या तुम्हें इनमें से कुछ शब्दों के सही हिज्जे याद हैं?”

इसके परिणाम आश्चर्यजनक रहे। मुझे लगा कि शब्द पूछने और इस्तेमाल करने वाले बच्चे को ही शायद उसके हिज्जे याद रहे होंगे, बाकी बच्चों को नहीं परंतु बाकी बच्चों को भी ब्लैकबोर्ड पर लिखे बहुत से शब्द याद रहे। उन्होंने उन शब्दों को कैसे सीखा? शायद जब मैं शब्दों को ब्लैकबोर्ड पर लिख रहा था उस समय बहुत से बच्चों ने अपना सिर उठाकर उन्हें शांति और उत्सुकता से देखा होगा। वे सिर्फ शब्द की लिखाई को देखना चाहते होंगे। परंतु उन शब्दों के बिंब और उनका उच्चारण उनके दिमाग में अच्छी तरह अंकित हो गए होंगे और अगले दिन तक उन्हें याद रहे। बच्चों द्वारा लिखाई और हिज्जे सीखने का मुझे यही सबसे अच्छा तरीका लगता है।

अगर स्कूल और शिक्षक बच्चों को किसी पुराने घिसे-पिटे तरीके से भाषा सिखाकर उसे खराब कर रहे हों तो इसमें माँ-बाप को क्या करना चाहिए? सबसे पहले तो आप उन्हें बदलने का प्रयास करें, या कम-से-कम उन्हें बताएँ कि आप खुद परिवर्तन के लिए उत्सुक हैं। आप अन्य अभिभावकों से भी चर्चा करें, अभिभावक शिक्षक समितियों में इन मुद्दों को उठाएँ। स्कूल में बच्चे के शिक्षक माता-पिता की राय जानने के इच्छुक होते हैं।

अगर स्कूलों और शिक्षकों को मनाना कठिन हो, तो क्या करें? शायद आप यही कोशिश कर सकते हैं कि आप का बच्चा स्कूल से ऊबे नहीं, निराश और चिंतित न हो। आप स्कूल की माँगों को पूरा करने में बच्चे की मदद करें, चाहे ये माँगे मूर्खतापूर्ण ही क्यों न हों और साथ-साथ घर में उसे रोचक और वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराएँ। बहुत-सी पुस्तकें और बातचीत, और जब बच्चा बात करना चाहे तो उसे इज्जत और गंभीरता से सुनें। गर्मी की छुट्टियों में अपने चाचा से लंबी बातचीत में मुझे कक्षा की तुलना में कहीं अधिक रोचक अंग्रेज़ी सीखने को मिलती थी। चाचा के साथ बातचीत में उम्र आड़े नहीं आती थी क्योंकि वे मेरी बातों को बहुत ध्यान से सुनते थे।

कॉलेज का पहला साल पूरा करने के बाद एक लड़की ने, जिसे मैं जानता था, अपनी माँ को लिखा, “वाह! क्या बात है। जरा सोचो कि अब मुझे कभी अँग्रेजी नहीं पढ़नी पड़ेगी।” परंतु वह लड़की अँग्रेजी की एक मेधावी छात्रा रही थी। उसे हमेशा से पुस्तकें पढ़ने, लिखने और विचारों को जानने का शौक था। यह कितनी बेकार और मूर्खतापूर्ण बात है कि शिक्षक अँग्रेजी जैसे रोचक, लचीले और सृजनशील विषय को बच्चों के लिए एक उबाऊ विषय बना देते हैं। हम आशा करें कि इसमें कुछ परिवर्तन होगा और हम एक बेहतर शुरुआत की ओर बढ़ेंगे।



बच्चों को दे पढ़ने का समृद्ध वातावरण

लता पाण्डे*

पिछले सप्ताह की बात है। मैं बस से परिषद् आ रही थी। मेरे आगे की सीट पर एक नन्हा बच्चा अपनी माँ के साथ बैठा था। पूरे रास्ते वह जैसे ही कोई होर्डिंग या पोस्टर देखता, झट उसे पढ़ने की कोशिश करता और पूरा वाक्य पढ़ लेने पर उसका चेहरा खुशी से चमक उठता। यह खुशी थी पढ़ने की... कि मैंने पढ़ लिया है। हाँ, मैं पढ़ सकता हूँ।

ऐसे अनेक नन्हे-मुन्हे आपको अपने आस-पास अकसर देखने को मिलेंगे। नन्हे कदम घर की दहलीज़ पार कर जैसे ही आगे बढ़ते हैं, इनकी स्वप्निल आँखें चारों ओर घूमने लगती हैं। रंगीन चित्र, कोई छपी हुई सामग्री इन आँखों को आकर्षित करती है और बच्चे उसे पढ़ने की कोशिश करते हैं। छपे हुए चित्र की सहायता से छपी हुई सामग्री का अर्थ तलाशते ये बच्चे, कुछ पढ़ पाने की खुशी से फूले नहीं समाते। ये पढ़ना चाहते हैं। भले ही बच्चा स्कूल कभी नहीं गया हो लेकिन अपने अनुमान के सहारे वह पढ़ने की कोशिश करता है और पढ़ता भी है। बच्चे बिना अक्षर-ज्ञान के भी किताब पढ़ लेते हैं। उनके दिमाग में अक्षरों और शब्दों के बिंब बन जाते हैं, जिनकी सहायता से वे पढ़ते हैं। प्रसिद्ध शिक्षाविद् **फ्रैंकस्मिथ** लिखते हैं-

“एक बार एक महिला अपने बच्चे के साथ एक डिपार्टमेंटल स्टोर गई। बच्चा वहाँ पर जो भी बोर्ड लगा देखता, उसे पढ़कर बता देता कि यह किस चीज़ की दुकान है। वह खिलौनों की दुकान की ओर गया, तो बिना खिलौने देखे ही उसने माँ से कहा कि “यह खिलौने की दुकान है।” माँ ने पूछा, “तुम्हें कैसे मालूम कि यहाँ खिलौने मिलते हैं।” बच्चे ने कहा, “मैंने बोर्ड पर पढ़ा।” माँ आश्चर्य से भर उठी क्योंकि न तो बच्चा कभी स्कूल गया था और न ही उसे अक्षर का ज्ञान था। फिर बच्चे ने पढ़ा कैसे? फिर माँ की समझ में आया कि बच्चे के मन में हर बोर्ड का एक चित्र बन गया है, इसलिए वह अक्षरों या लिखावट को चित्र की तरह पहचानने लगा है और उसी की सहायता से बता देता है कि कहाँ क्या लिखा है? अगर बच्चे बिना अक्षर ज्ञान किताब पढ़ लेते हैं तो यह बड़ा संकेत है बच्चों की पढ़ने की रुचि का। बच्चों में पढ़ने की स्वाभाविक ललक होती है। लेकिन स्कूल आने के कुछ ही दिनों बाद से, पढ़ने की यह इच्छा दम

* रीडर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

तोड़ने लगती है। इसका कारण यह है कि स्कूल और घर, दोनों ही स्थानों पर पढ़ने लायक रोचक सामग्री उन्हें नहीं मिलती। बच्चों को अपने चारों ओर छपी हुई या लिखित सामग्री से भरपूर परिवेश नहीं मिलता।

हमारे विद्यालय बच्चों को रोचक सामग्री मुहैया नहीं करवाते। अधिकांश शिक्षक पाठ्यपुस्तक को ही पढ़ना सिखाने का एकमात्र साधन मानते हैं। भाषा का शिक्षक पाठ्यपुस्तक की संकीर्ण परिधि तक ही सिमटा हुआ है। अधिकांश शिक्षक यह नहीं जानते कि बच्चे को पढ़ना सिखाने के लिए जरूरी है कि उन्हें पढ़ने के अधिक से अधिक अवसर दिए जाएँ। बच्चे के चारों ओर बिखरा भाषायी संसार ही, उन्हें भाषा सिखाने में बड़ी भूमिका अदा कर सकता है। दरअसल, पाठ्यपुस्तक के पन्नों पर छपी सामग्री को पढ़ना ही पढ़ना नहीं है। चारों ओर बिखरी लिखित और छपी हुई सामग्री को पढ़ पाना और उसमें से अर्थ निकालना ही सही मायनों में पढ़ना है। पढ़ने की कुंजी अनुमान लगाने का कौशल है। इसमें अनुमान करना, छपे हुए शब्द को अर्थ से जोड़ना और अपने अनुमान का परीक्षण करना शामिल है अतः जरूरत है ऐसी ही सामग्री के स्रोत को ढूँढ़ने की फिर उचित सामग्री को सही जगह पर रखने की। छपी हुई सामग्री के लिए विद्यालय की और इसके लिए कक्षा की दीवारों से अधिक उपयुक्त जगह भला और क्या हो सकती है? बच्चे के चारों ओर छपी हुई सामग्री रहेगी तो आते-जाते उसकी निगाह इन पर जाएगी। लेकिन यह सामग्री रोचक हो बालमन के अनुसार हो।

अकसर कक्षा की दीवारें या तो खाली रहती हैं या उन पर उपदेशों से भरे नैतिक वाक्य लिखे रहते हैं। ऐसे वाक्य बच्चों की समझ से कोसों दूर होते हैं। उपदेशों से भरी दीवारें बच्चों को सहज अपनेपन से भरा आत्मीय माहौल नहीं देतीं यही कारण है कि दिन में कई बार बच्चों की नज़रें इन पर पड़ती हैं पर इनमें ऐसा कुछ नहीं होता जो बच्चों को अपनी ओर आकृष्ट करे।

बच्चे में पढ़ने के प्रति रुचि जगाने में विद्यालय के पुस्तकालय बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। हमारे प्राथमिक विद्यालयों में पुस्तकालय नहीं के बराबर हैं। जो हैं भी उनमें पुस्तकालय के नाम पर हर वर्ष चंद किताबें रखी जाती हैं। ऐसी किताबें जो खरीदी तो बच्चों के लिए जाती हैं पर पहली और दूसरी कक्षा तो दूर पाँचवीं के बच्चे की समझ से भी परे होती हैं। एक बार मेरा एक प्राथमिक विद्यालय में किसी कार्य के सिलसिले में जाना हुआ। वहाँ के हेडमास्टर एक पुस्तक पढ़ रहे थे। हमने किताब देखी तो कहने लगे कि स्कूल की लाइब्रेरी के लिए खरीदी है। बातों-बातों में उनसे उस वर्ष खरीदी गई किताबों पर चर्चा की तो मालूम पड़ा कि विद्यालय के पुस्तकालय के लिए पूरे पाँच सौ रुपये की किताबें उन्होंने खरीदी थी। किताब अच्छे लेखकों की थीं लेकिन बच्चों के लिए उनमें कुछ भी नहीं था।

बच्चों के लिए खरीदी जाने वाली किताबें उनके स्तर की नहीं होतीं। दूसरे, अधिकांश विद्यालयों में पुस्तकालय के लिए अलग कमरा नहीं है। बच्चों के लिए खरीदी जाने वाली किताबों के नाम पर जो किताबें खरीदी जाती हैं, उन्हें पुस्तकालय के नाम पर बनी एक अलमारी में रख दिया जाता है। वह अलमारी जिसका ताला खुलना किसी उत्सव से कम नहीं होता। बेतरतीब ढंग से रखी गई किताबों की यह अलमारी बहुत ही कम खुलती है। इसका कारण है कि स्कूल में पढ़ाई यानी कि पाठ्यपुस्तक से पढ़ना ही पढ़ाई है। पुस्तकालय की किताबें स्कूल में पढ़ने को नहीं दी जातीं। इन किताबों को बच्चे घर नहीं लेकर जा सकते क्योंकि घर लेकर जाएँगे तो किताबें फटने का डर है। पहली और दूसरी के बच्चों को तो दी ही नहीं जातीं क्योंकि शिक्षक यही सोचते हैं कि ये तो ठीक से पढ़ भी नहीं पाते, इन्हें किताब देने से क्या लाभ? इससे तो अच्छा है कि ये खेलें। खेल बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसी तरह पढ़ना भी बच्चों की स्वाभाविक ललक है। नई चीज़ पढ़ना भी बच्चों को उमंग से भरता है। छपी या लिखी सामग्री को पढ़ने की कोशिश करना भी बच्चों के लिए एक खेल है।

इसलिए क्यों न इस पढ़ने के खेल का आनंद देने के लिए बच्चे को स्कूल में ही अधिक से अधिक सामग्री दी जाए। कक्षा की दीवार ही नहीं कक्षा का कोना भी बच्चों का अपना आनंद का कोना बन सकता है। रंग-बिरंगे चित्रों से सजी किताबें, बच्चों की पत्रिकाओं को कक्षा के एक कोने में रस्सी बाँधकर टाँगा जा सकता है। ध्यान रहे कि इतनी ऊँचाई पर इन किताबों को लटकाएँ कि बच्चों की पहुँच से बाहर न हों। बच्चे जब चाहे इन किताबों को छू सकते हैं, ले सकते हैं और इत्मीनान से बैठकर पढ़ सकते हैं। बच्चे के आस-पास बिखरी, छपी और लिखित सामग्री पढ़ने की संस्कृति पनपाने में कारगर सिद्ध होगी।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पढ़ना शुरू करने के कारगर उपागमों में छपी सामग्री की समृद्धता की संस्तुति करती है—

कक्षा में छपी हुई सामग्री की बहुतायत हो। संकेतों, चार्ट, कार्य संबंधी सूचना उसमें लगी हो ताकि विभिन्न अक्षरों की ध्वनियाँ सीखने के साथ वे लिखित संकेतों की पहचान भी कर सकें।

बच्चे के लिए पाठ्यपुस्तकों से इतर सामग्री के पठन पर भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 बल देती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बच्चे के परिवेश में छपी सामग्री भरपूर मात्रा में हो। टेलीविज़न संस्कृति के पनपने के कारण शिक्षित परिवारों के बच्चे भी घर में कहानियों की किताबें आजकल कम ही पढ़ते हैं। फिर ऐसे परिवारों के बच्चे, जहाँ से पहली बार किसी बच्चे ने विद्यालय में कदम रखा है, उनके पास घर में पढ़ने को कुछ रहता ही नहीं है। इतना ही नहीं दूरदराज के अंदरूनी इलाकों में तो पढ़ने के नाम पर दूर-दूर तक कुछ नहीं दिखता।

एक बार एक कार्यशाला के दौरान मुझे एक प्रतिभागी से यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजस्थान के एक इलाके में जब वे लोग किसी प्रोजेक्ट के सिलसिले में गए तो उन्होंने देखा कि वहाँ पढ़ने के नाम पर कोई पत्रिका तो दूर अखबार तक नहीं मिलता। मीलों तक छपी सामग्री नज़र ही नहीं आती। हमारे देश में दूर-दराज़ के कई स्थानों में ऐसी ही स्थिति मिलती है। जब बच्चे को दूर-दूर तक कुछ छपी या लिखी सामग्री नहीं दिखेगी तो पढ़ने की इच्छा कैसे जागेगी?

छपी सामग्री चाहे शब्द हों, चित्र या कार्टून बच्चे को कुछ देखने को, कुछ पढ़ने को उत्साहित तो करते ही हैं। कार्टून देखकर बच्चा हँसता तो है साथ ही उस कार्टून के साथ छपे शब्द को भी पढ़ने का प्रयास करता है। समझ न आने पर बड़ों से पूछता है। यही प्रयास करना, पूछना और पढ़ने का तथा अर्थ जानने का आनंद ही बच्चे का पढ़ने की दुनिया में प्रवेश है। एक बार पढ़ने का समृद्ध वातावरण मिलने पर बच्चा इस दुनिया में घुस गया तो फिर कभी निकलना नहीं चाहेगा। क्योंकि यहीं तो उसे मिल रहा है पढ़ने का आनंद और साथ में हो रहा है अनेक जिज्ञासाओं का समाधान, जानने को मिल रही हैं नई-नई बातें।

पढ़ने के लिए समृद्ध वातावरण का प्रभाव इतना सशक्त होता है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर भी इसका चमत्कारिक प्रभाव देखा जा सकता है। इनकी शारीरिक या मानसिक बाधा खेल-कूद एवं अन्य कई प्रकार की क्रियाओं से वंचित रखती है। ऐसे में पढ़ने का समृद्ध वातावरण इनमें मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ होने का अहसास बनाए रखता है। मेरा एक ऐसे मानसिक रूप से बाधित बच्चे से परिचय है जो अखबारों और किताबों के संसार में अपना सारा अवकाश का समय बिता देता है। उसके पास सैकड़ों अखबारों और किताबों का संकलन है जिनमें वह प्रतिदिन सुबह के अखबार और घर में आई नई किताबों से कुछ और नया जोड़ लेता है और रोज नियम से उन्हें देखता-पलटता है और वह हर रोज नया सीखता है। इनके माध्यम से माता-पिता, भाई-बहनों और परिचितों से उसका संवाद स्थापित होता है। किताबों और अखबारों की इसी दुनिया की वजह से वह देश के नेताओं, अभिनेताओं, महान विभूतियों और अपनी रुचि के न जाने कितने विषयों में अपना सामान्य ज्ञान विकसित करता रहता है। यह उदाहरण इतना बतलाने के लिए पर्याप्त है कि हर बच्चा पढ़ने की अभिलाषा रखता है। श्री दामोदर अग्रवाल की कविता **कोई लाके मुझे दे बालमन** की पढ़ने की चाहत को बखूबी बयाँ करती है—

कोई लाके मुझे दे
एक छुट्टी वाला दिन
एक अच्छी-सी किताब
कोई लाके मुझे दे।



क्या-क्या हो बच्चों की एक किताब में?

कमलेश चंद्र जोशी*

हाल के वर्षों में प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए पूरक पाठ्य सामग्री के रूप में चित्रात्मक पुस्तकों के प्रकाशन में गैर सरकारी संस्थाओं ने काफ़ी रुचि दिखाई है। इसके फलस्वरूप बच्चों के लिए नई-नई चित्रात्मक सामग्री निर्मित की जा रही है और बच्चों तक पहुँचाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। इसके साथ ही विभिन्न तरह की कार्यशालाओं के आयोजन की शुरुआत भी हुई है जिनमें बच्चों की पुस्तकों एवं उनके लिए लेखन से जुड़े पहलुओं पर चर्चा होती रही है।

कुछ समय पहले बच्चों के लिए पुस्तकालय कार्यक्रम चलाने वाली और बच्चों के लिए पुस्तकों के प्रकाशन से जुड़ी नई दिल्ली की एक संस्था ने ऐसे ही मुद्दों पर गंभीरता से विचार करने के लिए कार्यशाला का आयोजन किया। इसमें बच्चों की पुस्तकों और उनके लिए लेखन संबंधी मुद्दों पर एक-दूसरे के विचार जाने गए तथा कुछ मामलों में ठोस अहसास भी बने। इन्हीं चर्चाओं के आधार पर यह लेख तैयार किया गया है।

अच्छी किताब के संकेतक

यूँ तो अच्छी किताब को किसी खाके में बाँध पाना मुश्किल काम है। कार्यशाला में सर्वप्रथम इस मुद्दे को समझने का प्रयास किया गया कि बच्चों के लिए अच्छी पुस्तक के क्या मायने हैं? कार्यशाला में आए प्रतिभागियों ने इस बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए बताया- बच्चों की किताबों में काफ़ी चित्र हों, उनके आस-पास का परिवेश हो, कहानी-कविताओं में पशु-पक्षियों के चरित्र हों, कहानी का अंत सुखद हो, अक्षरों का आकार बड़ा हो आदि।

इतनी चर्चा के बाद उनका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया गया कि आप जिन पहलुओं की बात कर रहे हैं उनको ध्यान में रखते हुए बहुत-सी सामग्री बाज़ार में अभी उपलब्ध है। लेकिन क्या सिर्फ़ इन बिंदुओं के आधार पर बाल-साहित्य को अच्छा या बुरा बताया जा सकता है? शायद ज़रूरत इस बात

* नालंदा, बी-1/84, सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ-226024

पर विचार करने की भी है कि बच्चों की हमारे मन में क्या छवि है तथा इस छवि को मौजूदा बाल पुस्तकों में किस तरह से चित्रित किया गया है।

आगे चर्चा के दौरान यह बात उभरी कि बाल-साहित्य में बच्चे की स्वतंत्र छवि का उभरना जरूरी है जिसमें उसकी अपनी बात, अपनी सोच, अपनी कल्पनाशीलता तथा तर्कशीलता दिखाई दे। इस प्रकार बच्चों की किताबों में बच्चों की स्वयं निर्णय लेने की क्षमता, अपना तर्क रखने की क्षमता आदि आंतरिक मूल्य दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इसका उदाहरण प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' में दिखाई देता है। इस कहानी में जहाँ एक बच्चे की अपनी दादी के प्रति संवेदनशीलता उभर कर आती है, वहीं दूसरी तरफ़ यह बात भी सामने आती है कि हामिद इस कहानी में कहीं न कहीं स्वतंत्र रूप में निर्णय ले सकने वाली स्थिति पर भी कायम रहता है। कहानी में हामिद चिमटा लेने के पक्ष में अपने तर्क मजबूती से रखता है और अपनी दादी के लिए चिमटा खरीद लेता है जबकि उसके साथी विभिन्न प्रकार के खिलौने खरीदते हैं। यह बच्चों के लिए कहानी का एक ठोस आंतरिक मूल्य है जिसे समझने की जरूरत है।

इसी तरह नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'बस की सैर' की मुख्य पात्र वल्ली भी अपनी सहज जिज्ञासा का उपयोग करते हुए बस की यात्रा करती है। अपने तर्कों से वह बस कंडक्टर और बस के यात्रियों को संतुष्ट करती है। इस कहानी में एक बच्ची अपनी सोच, अपना तर्क और अपनी जिज्ञासा दर्शाती है जो एक नए किस्म का सामाजिक मूल्य है।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित एक अन्य पुस्तक 'कजरी गाय झूले पर' में भी गाय के माध्यम से बच्चों के मनोभावों को समझा जा सकता है। यहाँ एक गाय अपने रोजमर्रा के कार्यों को छोड़कर स्वतंत्र रूप से सोचते हुए झूला झूलने का अनुभव लेना चाहती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाल साहित्य में बच्चों की छवि को समझना अच्छी किताब का संकेतक (इंडेक्स) हो सकता है। आमतौर पर बाजार में उपलब्ध विभिन्न पुस्तकों में यह देखा जाता है कि कहानी के पात्र तो बच्चे और पशु-पक्षी हो सकते हैं लेकिन वे बड़ों की सोच के आधार पर अपने क्रियाकलाप करते हैं, अपना तर्क रखते हैं। ऐसी बहुत-सी सामग्री से बाजार पटा हुआ है।

बच्चों की किताबों के अन्य संकेतकों को समझने के लिए हम कुछ और किताबों पर निगाह दौड़ा सकते हैं। मसलन, चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

पुस्तक 'बुढ़िया की रोटी' को एक लोक-कथा के रूप में गूँथा गया है। इसमें घटनाओं का बार-बार दोहराव है और यह कहानी बच्चों के परिवेश से सशक्त रूप से जुड़ी हुई है। इस तरह की कहानी में बच्चों को घटनाओं के दोहराव के माध्यम से यह अंदाज लगाने का मौका मिलता है कि आगे बुढ़िया किस-किस के पास जाएगी और रोटी पाने का प्रयास करेगी। ताराबाई मोदक की कहानी 'खीरा खाऊँ कचर-कचर' में भी इसी किस्म का दोहराव है। अक्सर यह देखा गया है कि इस तरह की कहानियाँ बच्चों को पसंद आती हैं।

कई दफा बचपन की घटनाएँ या बाल सुलभ अनुभव भी बच्चों को बहुत भाते हैं। उदाहरण के लिए चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ननिहाल में गुजरे दिन' को याद कर सकते हैं। इसमें बचपन की घटनाएँ सहज रूप से एक के बाद एक सामने आती हैं। बच्चे इन्हें पढ़ते हुए कहीं-न-कहीं अपनी छवि को देखते हैं, अपने अनुभव से जोड़ते हुए उसमें आनंद पाते हैं।

चित्रों का महत्त्व

बाल साहित्य में चित्रों पर चर्चा के दौरान यह बात ज़्यादा स्पष्ट हो रही थी कि चित्र गत्यात्मक होने चाहिए जिससे बच्चों को लगे कि इनमें कुछ घटित हो रहा है, बजाय केवल स्थिर चित्र इस्तेमाल करने के। ऐसी ही कुछ बात चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'महागिरी' के चित्रों में देखी जा सकती है। इसमें हाथी के चेहरे पर उजागर समस्त भाव देखे जा सकते हैं। चित्रों के लिहाज से ऐसे ही कुछ और नाम याद आते हैं- नेशनल बुक ट्रस्ट की 'दीदी ने की बुनाई', 'चौदह चूहे घर बनाने चले', 'कजरी गाय झूले पर', स्कॉलिस्टिक इंडिया की 'पाजी बादल' आदि। इन सभी में चित्र न केवल महत्वपूर्ण हैं वरन् वे किताब के पाठ्य को समृद्ध भी करते हैं। बच्चे इन चित्रों की बारीकियों में जा सकते हैं और चीज़ों को खोजने का प्रयास कर सकते हैं। इसके साथ ही जो बच्चे ठीक से पढ़ नहीं पाते वे भी चित्रों के माध्यम से कहानी को समझने की कोशिश करते हैं और उसका स्वयं विस्तार करते हैं।

तयशुदा चरित्र एवं भाषा

बच्चों की अच्छी पुस्तकों पर चर्चा के दौरान यह बात उभरी कि अधिकतर पुस्तकों के चरित्र गढ़े हुए होते हैं और वे एक वयस्क के नज़रिए से सोचते या

क्रियाकलाप करते हैं। इससे कहानियाँ एक ही सपाट ढर्रे पर चल पड़ती हैं और उनमें बच्चों का कोई अनुभव नहीं दिखाई पड़ता।

आमतौर पर कहानियों के चरित्रों में एकतरफा नायकत्व के गुण भरे होते हैं जिससे आसानी से स्पष्ट हो जाता है कि कहानी में कौन नायक है और कौन खलनायक। कहानी में नायक हर समस्या का निदान खोज लेता है और अंत में विजय प्राप्त करता है। ऐसी कहानियाँ बच्चों को कोई नई दृष्टि प्रदान नहीं करतीं। इन्हें 'चंपक' एवं विभिन्न प्रकार की कॉमिक्स में अक्सर देखा जा सकता है।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में बाल-साहित्य में चले आ रहे कुछ स्टीरियो-टाइप तोड़ने की ज़रूरत है—चाहे वह भाषा के स्तर पर हो या विषयवस्तु के स्तर पर। भाषा के स्तर पर यह कहा जाता है कि बच्चों के लिए सरल वाक्य हों। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि अगर भाषा में बच्चों के स्थानीय परिवेश के कई शब्द सहजता से आते हैं तो उनको लेकर समस्या नहीं होनी चाहिए। इस बात को भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि बच्चों के लिए भाषा बनावटी न हो। अगर शब्द सहज रूप से इस्तेमाल किए जाएँ तो कठिन शब्दों को भी बच्चे कहानी के संदर्भ द्वारा अनुमान लगाकर समझ सकते हैं। गुलजार द्वारा बच्चों के लिए रचित रचनाएँ 'पाजी बादल', 'बोस्की का पंचतंत्र', 'बोस्की के ब्राह्मण', 'पोटली बाबा की' आदि पुस्तकों में भाषा का प्रवाह और किस्सागोई देखने को मिलती है और उर्दू के शब्द भी मिलते हैं। इससे कहानी समृद्ध ही होती है। ऐसी ही बातें 'ननिहाल में गुजरे दिन' में भी दिखाई देती हैं। बच्चों के लिए पूरक पाठ्य सामग्री निर्मित करने का एक उद्देश्य यह भी है कि बच्चों का अच्छे साहित्य से परिचय हो सके।

लोक-कथाओं और पंचतंत्र के बारे में चर्चा के दौरान ये बातें उभरी कि लोक-कथाएँ और पंचतंत्र बच्चों को ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई हैं क्योंकि उस समय बच्चों के लिए लिखने की अलग परंपरा नहीं थी। दूसरे, इन कथाओं में कहीं-कहीं स्त्री-पुरुष संबंधों की भी चर्चा है, जिसकी वजह से ये सिर्फ बच्चों के लिए लिखी गई होंगी ऐसा नहीं लगता। साथ ही लोक-कथाओं को समझने के लिए स्थानीय संदर्भ पर ध्यान देना ज़रूरी है। ज्यादातर लोक-कथाएँ श्रुति परंपरा के तहत रची गई हैं। कई लोक-कथाओं में आम जीवन की समस्याओं को परिकल्पना के सहारे हल करने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी इनमें किसी चीज़ की सृष्टि की कहानी बताई जाती है; उदाहरण के लिए - दुनिया

कैसे बनी? ऐसी कहानियों में तर्क या वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अपेक्षा करना फिजूल है क्योंकि वे इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई हैं।

लोक-कथाओं को बच्चों के साथ पढ़ते समय बच्चों से यह जरूर पूछना चाहिए कि कहानी में समस्या का जो समाधान सुझाया गया है उसके अलावा उनकी नज़र में समस्या का और क्या निदान हो सकता है।

लोक-कथाओं की एक श्रेणी हिरोइज्म लिए होती है। इनका मुख्य पात्र अत्यंत शक्तिशाली और साहसी होता है और वह हर समस्या का हल अपने पौरुष से निकाल लेता है। लोक-कथाओं में भूत, चुड़ैल, जादू, चमत्कार, चोरी, ठगी आदि। प्रतिबिंबित होते हैं। ये सब उस समय के सामाजिक यथार्थ का हिस्सा थे। इसी तरह लोक-कथाओं में कई तरह के सामाजिक भेदभाव भी अक्सर देखने को मिलते हैं। इसलिए हमें अपना नज़रिया स्पष्ट रखना चाहिए ताकि हम तय कर पाएँ कि किस लोक-कथा का बच्चों के साथ उपयोग करें और किस उद्देश्य के लिए करें।

कॉमिक्स के बारे में हुई चर्चा में स्पष्ट हुआ कि यह एक आधुनिक विधा है जिसमें चित्रों को बनाने के लिए सीमित स्थान है। इस कारण चित्रकार की रचनात्मकता के लिए बहुत गुंजाइश नहीं होती। कॉमिक्स में यह देखने में आता है कि घटनाएँ एकाएक छलाँग लगाती हैं, और विचार गायब रहते हैं। कॉमिक्स में बच्चों के सोचने-विचारने तथा खुद से विज्युलाइज़ करने की गुंजाइश नहीं बचती। इसलिए बच्चों को कॉमिक्स के अलावा अन्य पाठ्य सामग्री से भी परिचित करवाया जाना चाहिए। साथ ही कॉमिक्स के फॉर्मेट को समझने की जरूरत भी है। इस फॉर्मेट में भी बच्चों के लिए अच्छी कहानी बनाई जा सकती है।

शुरुआती उम्र के पाठक

तीन से छह वर्ष के बच्चों के लिए किताबों के बारे में हुई चर्चा के दौरान यह बात उभरी कि स्कूल आने से पूर्व बच्चों के पास कहानी का एक ढाँचा होता है। इसका कारण यह है कि बच्चे अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी से घर पर कोई-न-कोई कहानी सुनते रहते हैं। इस कारण उनके मन में कहानी की एक संरचना होती है और वह संरचना मिलने पर बच्चे उसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं और उसमें आनंद लेते हैं। ऐसी किताबों की फेहरिस्त में रत्नासागर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें 'लालू-पीलू', 'हीरा', नेशनल बुक ट्रस्ट की पुस्तकें 'आम की कहानी', 'मैंढक और साँप', यूनीसेफ, लखनऊ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भालू

का बच्चा' तथा एकलव्य, भोपाल द्वारा प्रकाशित कुछ चित्रकथाएँ 'मैं भरी...', 'रूसी-पूसी', 'चूहे को मिली पेंसिल', 'नाव चली' आदि हैं जिन्हें बच्चे चाव से देखते-पढ़ते हैं। रत्नासागर द्वारा प्रकाशित 'मेज-', 'घेरा' आदि अवधारणात्मक पुस्तकों का बच्चे आनंद नहीं ले पाते क्योंकि उसमें कहानी की कोई संरचना नहीं होती।

तीन से छह वर्ष की आयु वर्ग के लिए चित्र-पुस्तकें भी उपयोगी होती हैं जिनसे बच्चों में किताबों के प्रति रुचि बनाई जा सकती है। लेकिन हमारे यहाँ इतने छोटे बच्चों के लिए चित्र-पुस्तकों को प्रकाशित करने की बहुत समृद्ध परंपरा नहीं है। चित्र-पुस्तकों में केवल चित्र होते हैं और इनके माध्यम से ही कहानी कही गई होती है। इन किताबों में जरूरत इस बात की होती है कि चित्र ऐसे हों जिन्हें बच्चे आसानी से जोड़कर कहानी का अनुमान लगा सकें। चित्र-पुस्तकों को तैयार करने में चित्रकार की भूमिका अत्यंत अहम होती है। हमारे यहाँ ऐसी चित्रात्मक पुस्तकें ही ज्यादा छपती हैं जिनका मकसद पाठ्य को समृद्ध करना होता है।

किस तरह की किताबें

छोटे बच्चे पशु-पक्षियों को एक आत्मीयता से देखते हैं। उनमें बच्चों के मनोभावों की तरह गतिशीलता भी होती है। साथ ही पशु-पक्षी आसानी से बच्चों के परिवेश में दिखाई पड़ते हैं और उनमें से कई पालतू भी होते हैं। जब पशु-पक्षियों की किसी कहानी में बच्चे अपने क्रियाकलापों को कल्पनाशीलता और फैंटेसी के रूप में देखते हैं तब वे उसका आनंद लेते हैं। कई दफा बच्चों के लिए पशु-पक्षियों की कहानियों में चरित्रों का मानवीकरण किया जाता है। ऐसी बहुत-सी कहानियाँ मिलती हैं और इसमें कोई बुराई भी नहीं है कि पशु-पक्षी मानवीकृत व्यवहार करें या अपनी प्रकृति के अनुरूप। दोनों तरह की कहानियाँ बच्चों के लिए लिखी जाती हैं। छोटे बच्चों को सुखद अंत वाली कहानियाँ अच्छी लगती हैं क्योंकि वे दुनिया को ठीक-ठाक ढंग से देखना चाहते हैं कि उसमें कुछ गड़बड़ न हो और कुछ गड़बड़ हो रही हो तो उसका बाद में सकारात्मक हल निकल जाए और लगे कि सब कुछ ठीक हो गया।

छोटे बच्चों की ऐसी कहानियाँ भी अच्छी लगती हैं जिनमें घटनाओं का दोहराव हो जैसे- 'रूसी-पूसी', 'नाव चली', 'मैं भरी' आदि पुस्तकों को ध्यान से देखें तो समझ में आता है कि उनमें बच्चों के लिए बाल सुलभ गतिविधियाँ

हैं और बच्चों की सोच के अनुसार घटनाओं का दोहराव भी। इसको इस बात से भी जोड़कर देख सकते हैं कि अगर इन कहानियों में कविता की दो-चार पंक्तियाँ आती हैं तो बच्चों को मज़ा आता है। जैसे मुझे पाठ्यपुस्तक में पढ़ी एक कहानी याद आ रही है जिसमें गिलहरी को मेहनती और कौवे को आलसी दिखाया गया है। गिलहरी कौवे को अपने साथ काम पर चलने के लिए कहती है लेकिन वह यही दोहराता है कि तू चल मैं आता हूँ, चुपड़ी रोटी खाता हूँ, हरी डाल पर बैठा हूँ, ठंडा पानी पीता हूँ और इस तरह से ये पंक्तियाँ बार-बार आती हैं जिसकी वजह से बच्चा कहानी के ढाँचे को पकड़ लेता है और उसे कहानी में आनंद भी आता है। बच्चों के लिए कहानियाँ ओपन-एंडेड भी हो सकती हैं जिसमें बच्चों को कहानियों का एक हल दिया गया है और वे उसका अन्य विकल्प भी खोज सकते हैं या अपनी सोच से कहानी को आगे बढ़ा सकते हैं।

इस कार्यशाला में यह बात भी रेखांकित हुई कि पाठ्यपुस्तकों से इतर पूरक सामग्री का बच्चों के साथ भाषा की कक्षाओं में सक्रिय रूप से उपयोग होना चाहिए जिससे भाषा शिक्षण को एक नया आयाम मिले। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज 2005 के भाषा के फोकस ग्रुप पर्चे में भी काफ़ी शिद्दत के साथ पूरक सामग्री के इस्तेमाल का ज़िक्र किया गया है। इससे भाषा शिक्षण के प्रति नया नज़रिया बनाने में मदद मिल सकती है।



चित्रात्मक-पुस्तकें – बच्चों के साथ अनुभव और टिप्पणियाँ

कमलेश जोशी*

बच्चों की भाषायी अभिव्यक्ति को जगह देने के लिए चित्रात्मक पुस्तकों पर बातचीत करना एक अच्छी गतिविधि मानी जाती है। बच्चे किताब के विविध भाषायी अनुभवों के साथ-साथ चाक्षुष अनुभवों से भी गुजरते हैं और उन्हें कहानी को विजुअल रूप से आगे बढ़ाने, अंदाज़ा लगाने और अनुभव जोड़ने का अवसर मिलता है। यह कुछ ऐसा ही होता है जैसे हम अपने जीवन के रोज़मर्रा के अनुभवों, घटनाओं को कहीं न कहीं किसी किताब, चित्र, फिल्म से जोड़ने का प्रयास करते हैं और एक नया अर्थ प्रदान करते हैं।

इसके लिए ज़रूरी यह है कि बच्चों में चित्र देखने की आदत डाली जाए। इसके साथ ही इन पुस्तकों को बच्चों के साथ नियमित रूप से प्रयोग किया जाए। इन पर बातचीत तथा नियमित क्रियाकलाप आयोजित किए जाएँ। अगर हम यह सोचने लगें कि शुरुआत में ही बच्चे एकदम चित्र देखने लग जाएँ और अपनी प्रतिक्रिया देने लग जाएँ तो मुश्किल है। हमारा अनुभव है कि चित्रात्मक पुस्तकों को जब हमने विभिन्न क्षेत्रों के बच्चों (आदिवासी क्षेत्रों के छोटे बच्चों, मदरसों के बच्चों, प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों या स्लम बस्तियों में रहने वाले बच्चों) के साथ पहली बार इस्तेमाल किया तो वे चित्रों को केवल अलग-अलग एक 'फोटो' के रूप में ही देख पाए और उसका एक क्रम बनाने में असफल रहे। इसका कारण शायद यह रहा कि इन बच्चों का ऐसी पुस्तकों से कभी कोई वास्ता ही नहीं रहा।

जब हमने अपने एक अनौपचारिक शिक्षण केंद्र में छोटे बच्चों के साथ नियमित रूप से चित्रात्मक पुस्तकों का इस्तेमाल करना शुरू किया तो इसके परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे। बच्चे इन किताबों से अपना रिश्ता जोड़ने लगे, चित्रों के आधार पर किताबों को पहचानने लगे, बातचीत के दौरान किताबों से अपने अनुभवों को जोड़ने लगे। हमारे केंद्र पर नियमित रूप से आने वाला एक बच्चा इंद्रजीत एक दिन केंद्र पर नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'मेंढक और साँप' को देखते हुए अपने साथी भारत को बता रहा था, "इतना मोटा साँप,

* नालंदा, बी-1/84, सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ-226024

मेंढक कितना छोटा है। अभी साँप मेंढक को खा जाएगा। फिर वह आगे पन्ने को पलटते हुए बताता कि मेंढक, पानी में रहता है, यह देखो साँप आ रहा है।” ऐसी प्रतिक्रियाओं से यह स्पष्ट होता है कि इंद्रजीत छोटे-बड़े को समझता है, वह एक अनुमान लगा रहा है तथा किताब के साथ एक रिश्ता जोड़ रहा है।

इसी तरह से चार साल का गुड्डू भी पुस्तक **ये है पेड़** को देखते हुए अपनी स्थानीय भाषा में बता रहा था, “पेड़ में आम लगा है, तोड़े के खावा जाए।” इसके साथ वह पेड़ से आम खाने का अभिनय भी कर रहा था। इसी किताब में आगे पेड़ पर बैठे बंदरों का दृश्य देखकर वह कह रहा था, “पेड़ पर बंदरवा बईठ है, सारे का मार डालो।” फिर वह अपने हाथों से बंदर को मारने का अभिनय करने लगा। यहाँ स्पष्ट होता है कि किताबों के चित्र बच्चों के सामने अंदाजा लगाने का एक पूरा संदर्भ रखते हैं। जहाँ बच्चे अपने अनुभवों के खजाने को उससे जोड़ते हैं। यहाँ बच्चों को नियमित रूप से मौके देने की बात उभर कर आती है जिससे वे अपनी कल्पनाशीलता, अवलोकन क्षमता, अपने अनुभवों को साझा कर पाएँ। इस बातचीत में बच्चों की तर्कशीलता को भी जगह मिलती है। उक्त सारी बातें बच्चों के भाषा विकास के महत्वपूर्ण आयाम हैं।

इसी तरह जब हमने अपने खुद के एक औपचारिक विद्यालय में बच्चों के पढ़ना सीखने के संदर्भ में चित्रात्मक पुस्तकों का इस्तेमाल शुरू किया तो पहले पहल यह देखने को मिला कि इन बच्चों के लिए किताब का पाठ केवल हू बहू पढ़ने की चीज़ था जबकि चित्र देखना एक अलग क्रियाकलाप। यह बात उनके जेहन में कहीं नहीं थी कि किताब के चित्र पाठ्यसामग्री के अनुसमर्थन में हैं क्योंकि उनके पास इन किताबों से जुड़ाव का कोई पूर्व अनुभव नहीं था। यह देखा गया कि जब बच्चे किताबों को पढ़ने का प्रयास करते तो केवल उसके पाठ्य में ही उलझे रहते और उसके चित्रों से तालमेल बनाने का कोई प्रयास नहीं करते। यह बात कुछ ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों के साथ इन किताबों के इस्तेमाल के दौरान उजागर हुई।

जब हमने अपने विद्यालय के बच्चों के साथ नियमित रूप से इन पुस्तकों का प्रयोग किया और बच्चों को नियमित रूप से मौके दिए तो वे चित्रों के साथ पाठ्य को जोड़ने का प्रयास भी करने लगे जहाँ उन्हें पाठ्य को पढ़कर समझने तथा नए शब्दों के अर्थ को समझने में मदद मिली। यह सब करने के लिए शिक्षकों के साथ काफ़ी बातचीत करनी पड़ी, पढ़ना सीखने पर उनकी समझ बनानी पड़ी।

इसके साथ ही उनको विद्यालय में भी सामग्री चयन करने और बच्चों के साथ उपयोग करने पर नियमित सहयोग प्रदान किया गया। तब जाकर यह कार्य संभव हो पाया। इन प्रक्रियाओं से शिक्षकों को भी बच्चों के पढ़ना सीखने और चित्रों पर बातचीत करने का मतलब समझ में आया। उनको यह पता लगा कि बच्चों को अक्षर, शब्द, मात्रा, वाक्यों को पहचानने तथा पढ़कर समझने के लिए बहुत जरूरी है कि बच्चों से विभिन्न अनुभवों, कहानी तथा पाठ्यसामग्री एवं चित्रों पर बातचीत की जाए जिससे वे उसे अपने-आप से जोड़ पाएँ, अनुमान लगा पाएँ, बातचीत कर पाएँ तथा पढ़े हुए को समझ पाएँ।

इसके उपरांत कक्षा के अवलोकनों में बच्चों के पढ़ने पर गौर करने और उसे समझने का भी मौका मिला कि बच्चे कैसे अर्थ तक पहुँचते हैं, अनुमान लगाते हैं। उदाहरण के लिए एक दिन जब विद्यालय के कक्षा 2 के अवलोकन के दौरान यह देखा गया कि वीरेंद्र नाम का बच्चा चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'महागिरी' पढ़ रहा था तथा उस कहानी में आए 'ध्वज' को पढ़ पाने में उसे कठिनाई आ रही थी और न ही उसका अर्थ समझ पा रहा था। अवलोकन के दौरान यह देखा गया कि जब उसने चित्र पर गौर किया तो उसकी समझ में आ गया और उसने बातचीत के दौरान 'ध्वज' का अर्थ झंडा बताया। ऐसी बात अन्य पाठ्यसामग्रियों के इस्तेमाल के दौरान भी हुई।

प्राथमिक स्तर के बच्चों के साथ काम करते हुए यह अनुभव भी मिला कि बच्चे चित्रात्मक पुस्तकों में बने प्रभावी चित्रों के माध्यम से कहानी के पात्रों की भावनाओं से भी जुड़ते हैं और उस पर ध्यान देते हैं। जबकि वैसे कहीं न कहीं उनका ध्यान कहानी के अंतिम परिणाम पर केंद्रित रहता है कि आखिर में क्या होगा? यहाँ पर शिक्षाविद् और कलाविद् देवी प्रसाद की नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'शिक्षा का वाहन: कला' का एक उद्धरण याद आता है जिसमें वे चित्रात्मक-पुस्तकों में चित्रों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं, "पुस्तक के चित्र, पुस्तक के विषय को शब्दों के माध्यम के द्वारा अनुभव कराने के साथ-साथ आँख द्वारा भी अनुभव कराएँ। आमतौर पर यह समझा जाता है कि चित्र में शब्दों के रूपांतरण होने से उसका काम पूरा हो गया। किंतु इतना ही नहीं, चित्र की वह भाषा है, जो शब्दों की नहीं होती है। और जिस परिस्थिति को शब्द बयान करने में असफल होते हैं, उसे चित्र अनुभव कराते हैं। चित्र का संबंध चाक्षुष अनुभवों से अधिक होता है। इसलिए

उनका लिखे हुए के साथ पूर्ति का संबंध होना चाहिए, रूपांतर का नहीं। जहाँ लिखे हुए को चित्र से मदद मिलती हो और जहाँ लिखे हुए की कमी को चित्र पूरा करे, वहाँ वह देना चाहिए।” (पृष्ठ 134)

कुछ किताबें जैसे कि नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा प्रकाशित पुस्तक ‘चौदह चूहे घर बनाने चले’ का चित्रांकन विस्तारित रूप में है। ऐसे चित्रांकन बच्चों को चित्रों को गौर से देखने का मौका प्रदान करते हैं। इस पर बच्चों से विस्तृत बातचीत की जा सकती है। इसी तरह से कुछ किताबें जैसे कि एकलव्य, भोपाल द्वारा प्रकाशित ‘रूसी और पूसी’ के मुखपृष्ठ का चित्रांकन कल्पनाशील ढंग से किया गया है। इसमें बच्चों के लिए उत्सुकता जगाने का यह मौका है कि रूसी कौन है? क्योंकि किताब के मुखपृष्ठ पर बिल्ली दी हुई है जो कि पूसी है। इसी तरह से तूलिका, चेन्नई द्वारा प्रकाशित पुस्तक ‘नोरबू के नए जूते’ में भी मुखपृष्ठ पर केवल बंदर की पूँछ ही दिखाई देती है जिसमें बच्चे अनुमान लगा सकते हैं कि यह पूँछ किस जानवर की है? ऐसे मुखपृष्ठ बच्चों के लिए उत्सुकता जगाने वाले माने जा सकते हैं। यहाँ बच्चों के प्रसिद्ध लेखक-चित्रकार एडवर्ड आर्डीजोन की बात याद आती है, “हमें पाठक को बहुत अधिक नहीं बताना चाहिए। मेरी समझ में नायक का सबसे अच्छा हिस्सा वही होता है जो कहीं छिपा होता है।” यही बात शायद बच्चों के लिए चित्रांकन के बारे में भी कही जा सकती है।

कुछ चित्रात्मक पुस्तकों के चित्र बच्चों से बातचीत करने के काफ़ी मौके प्रदान करते हैं। जैसे आम की कहानी, चौदह चूहे घर बनाने चले, मेढक और साँप, कजरी गाय झूले पर, पगला आम, शेरा और मिट्टू, एक दोस्त साँप, लालू और पीलू, लाल पतंग, लालची बछिया गुलाबो, रूपा हाथी, मुनिया ने पाया सोना, प्यासी मैना, सोनाली का मित्र आदि। इन किताबों को बच्चों के साथ प्रयोग करते हुए यह देखा गया कि बच्चे इसके माध्यम से कहानी को तो समझ ही रहे हैं इसके साथ ही चित्रों के माध्यम से कहानी भी समृद्ध हुई है। इन किताबों के चित्रों में गत्यात्मकता है जो बच्चों के मनोभावों से मेल खाती है। इसके साथ ही बच्चों से बातचीत करने के कई रास्ते भी खोलती है जिससे बच्चों की कल्पनाशीलता और रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है।

इस सूची में हाल ही में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित भाषा की ‘रिमझिम’ शृंखला की पाठ्यपुस्तकों को भी रखा जा सकता है। जिसमें पाठ्यसामग्री के साथ काफ़ी अच्छे चित्र भी बने हुए हैं

और वे बच्चों को बातचीत का खूब मौका प्रदान करते हैं। ये सारे चित्र स्थानीय परिवेश से भी जुड़े हुए हैं चाहे वह शहरी परिवेश हो या गाँव का। इसके अलावा पाठ्यपुस्तक में देश के विभिन्न अंचलों के चित्रों की झलक भी मिलती है। चाहे यह मधुबनी शैली (बिहार) के चित्र हों, या वरली (महाराष्ट्र) या पट्ट-चित्र (उड़ीसा) शैली के। इन शैलियों के चित्रों पर भी बच्चों से बातचीत की जा सकती है। इससे जहाँ बच्चों को अपनी संस्कृति को पहचानने का मौका मिलता है वहीं उनमें एक कलाबोध भी विकसित होता है।

बच्चों के साथ काम करते हुए यह सीख मिलती है कि चित्रात्मक पुस्तकों पर ऐसी बातचीत की जाए जो उनकी कल्पनाशीलता, उनकी सोच, उनके तर्क तथा उनके अनुभव को आगे बढ़ाती हो न कि केवल तथ्यात्मक बातचीत जो कि मात्र जानकारीयों ही बढ़ाती हो। इसके साथ यह अनुभव भी किया जा सकता है कि बच्चों को चित्रों को देखने के जितने अधिक मौके दिए जाएँगे उतनी ही उनकी इन पुस्तकों पर व्याख्या करने, विश्लेषण करने की क्षमता बढ़ेगी। जबकि अक्सर होता यह है कि आम तौर पर चित्रात्मक पुस्तकों पर बातचीत केवल इतने तक सीमित रहती है कि चित्र वाली पुस्तकें बच्चों को अच्छी लगती हैं और शिक्षक उसे केवल एक 'कर देने वाली' गतिविधि के रूप में देखते हैं। इससे यह पता नहीं चलता कि बच्चे किताबों पर क्या प्रतिक्रिया दे रहे हैं और क्यों दे रहे हैं? यह उनके संज्ञानात्मक विकास से कैसे जुड़ा हुआ है? जबकि बच्चों के साथ इन पुस्तकों के उपयोगकर्ता को इन बातों को भी समझने की ज़रूरत है।

चित्रात्मक पुस्तकों में चित्रों की अहमियत इस बात से भी समझ में आती है कि अगर कुछ किताबों में चित्र न हों तो शायद वे बच्चों को उतनी आकर्षक न लगें। उदाहरण के लिए गुलज़ार की लिखी तथा स्कालिस्ट इंडिया, गुड़गाँव द्वारा प्रकाशित पुस्तक **पाजी बादल**, तूलिका, चेन्नई द्वारा प्रकाशित पुस्तकें **नोरबू के नए जूते** और **रंग पसंद लड़का** नामक पुस्तकों में चित्र न हों तो केवल कहानी बच्चों में कम उत्सुकता जगा पाती है। यहाँ चित्रों की अहमियत समझ में आती है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट होती है कि पुरानी कहानियों, लोक कथाओं आदि में जिसमें वर्णन प्रमुख है उन्हें बच्चों को सुनाया जा सकता है और बच्चे बिना चित्रों के आनंद भी लेते हैं। इस प्रकार कहीं-न-कहीं यह भी लगता है कि चित्रात्मक पुस्तकें कहीं-न-कहीं कहानी में वर्णन, कथोपकथन आदि को भी पूरा करती हैं जिससे बच्चे एक जुड़ाव महसूस करते हैं।

आमतौर पर बच्चों की चित्रात्मक पुस्तकों के बच्चों के साथ प्रयोग के समय अधिकतर चर्चा इस बात पर केंद्रित रहती है कि इन पुस्तकों के चित्रों पर कक्षा में बच्चों के मौखिक भाषायी कौशल, अवलोकन तथा विश्लेषण क्षमता आदि पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? इस तरह से यह चित्रात्मक पुस्तकों को एक खास दायरे में सीमित करके देखने की कोशिश कही जा सकती है। निश्चित ही चित्रात्मक पुस्तकों का प्रयोग बच्चों में इससे कहीं आगे कला बोध विकसित करने के लिए ही किया जाना चाहिए। इसके बारे में देवी प्रसाद जी की पूर्वोक्त पुस्तक के एक और उद्धरण पर गौर करना उचित होगा “चित्र चाहे कहीं भी क्यों न हों – चाहे दीवार पर फ्रेम में या कैलेंडर पर, एलबम में या पुस्तक में, कलाबोध की दृष्टि से अच्छे होने चाहिए। उनका उद्देश्य सुरुचि का निर्माण होना चाहिए। कलाबोध जीवन में अत्यंत आवश्यक वस्तु है और उसके लिए पुस्तकों में दिए गए चित्र खास महत्व रखते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि जो भी चित्र बच्चों के साहित्य में दिए जाएँ, वे कला की दृष्टि से अच्छे होने चाहिए।”

अंत में, यह कहना उचित होगा कि चित्रात्मक पुस्तकों की बच्चों के सीखने-सिखाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे जहाँ बच्चों की भाषा समृद्ध होती है वहीं इसके द्वारा उनमें अच्छा साहित्य पढ़ने की आदतों का विकास भी किया जा सकता है और एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही जा सकती है कि बच्चों में इन पुस्तकों के द्वारा कलाबोध भी विकसित किया जा सकता है जो हमारी स्कूली पढ़ाई में सिरे से गायब है। जाहिर है, इन सबके लिए सार्थक प्रयासों की ज़रूरत पड़ेगी।



पुस्तकें पढ़ें, आगे बढ़ें

वि.वि. सिंह*

कक्षा 3-5 के लिए समय सारिणी में पुस्तकालय हेतु कोई कालांश निर्धारित नहीं था। सर्वप्रथम स्टाफ मीटिंग में निर्णय लेकर हम लोगों ने समय चक्र में सप्ताह में एक कालांश बढ़ा लिया जिसे शनिवार को समायोजित किया गया। अब सभी कक्षाओं के समय चक्र में सोमवार से शनिवार के मध्य एक-एक कालांश पुस्तकालय हेतु निर्धारित किया गया। एक शिक्षिका को जिन्होंने इस कार्य में विशेष रुचि ली, यह काम सौंपा गया। उस शिक्षिका ने जूनियर स्कूल में पूर्व में उपलब्ध पुस्तकों को जमाया। साथ ही सीनियर स्कूल पुस्तकालय में जाकर बड़े श्रम से कक्षा 5 तक के बच्चों के स्तर की पुस्तकें छाँटी। पुस्तकालयाध्यक्ष के सहयोग से वे सभी पुस्तकें जूनियर स्कूल में स्थानांतरित कर दी गईं।

पुस्तकालय कालांश में एक कक्षा के सभी बच्चे पुस्तकालय में जाने लगे। अल्मारियाँ खुली होतीं, बच्चे उन्हें देखते और अपनी मर्जी से एक पुस्तक इश्यू करवाते। अध्यापिका एक बच्चे द्वारा ली गई पुस्तक का नाम, बच्चे का नाम आदि लिखतीं, उस दौरान बाकी बच्चे बैठकर पत्रिकाएँ पढ़ते। अब आवश्यकता महसूस हुई कि बाल पत्रिकाओं की संख्या बढ़ाई जाए, कम-से-कम 30-35 हों जिससे प्रत्येक बच्चे को एक समय में एक पत्रिका मिल सके। पत्रिकाओं के अतिरिक्त चित्रकथाएँ रखी गईं जिनको पढ़ने में बच्चे विशेष रुचि लेते। बच्चों को एक सप्ताह के लिए एक पुस्तक इश्यू होती। पत्रिकाएँ और चित्र कथाएँ इश्यू नहीं की जातीं, उन्हें वहीं बैठ कर पढ़ना होता था। अगले चरण में कक्षा पुस्तकालय की व्यवस्था की गई। प्रत्येक कक्षा-कक्ष में एक नकूचे वाली डेस्क इस हेतु प्रयुक्त की गई। 40-50 पत्रिकाएँ (जिनमें पुराने अंक भी सम्मिलित थे) तथा चित्र कथाएँ रखी गईं। प्रत्येक कक्षा में एक बच्चे को यह जिम्मेदारी सौंपी गई कि वह खाली समय में बच्चों को पत्रिकाएँ और चित्र कथाएँ बाँट दे और अगले कालांश की घंटी बजने पर सब बच्चे अपने आप आकर जमा कराएँ जिससे काम जल्दी हो जाए। प्रत्येक कक्षा के लीडर को एक-एक ताला भी दिलवाया गया। धीरे-धीरे बच्चों की रुचि बढ़ने लगी। कोई 2-4 बच्चे, पढ़ने में रुचि न

* 17, टैक्नोक्रेट सोसाइटी, बेडला रोड, उदयपुर-313011, राजस्थान

लेकर शैतानी करते तो दूसरे बच्चों को नागवार गुजरता। जल्दी ही ऐसी स्थिति भी आई कि लीडर के अनुपस्थित रहने पर बच्चे प्रधानाध्यापिका के पास पहुँच गए कि आज हमें पत्रिकाएँ नहीं मिल पाई। स्टाफ से चर्चा करके इस समस्या का हल ऐसे निकाला गया कि एक के बजाय दो लीडर बना दिए गए और ताले की दूसरी चाबी उसके पास रहती जिससे इस व्यवस्था में व्यवधान न आए।

पत्रिकाओं की संख्या बढ़ाने में मदद ऐसे मिली कि एक पत्रिका के विज्ञापन में पढ़ा कि पिछले तमाम अंक आधी कीमत में मँगाए जा सकते हैं। आधी कीमत में उपलब्ध पत्रिकाओं के 7 सेट मंगा लिए गए। अब कक्षा पुस्तकालय अच्छे खासे समृद्ध हो गए।

उस सत्र के अंत में यह पता लगाने की भी कोशिश की गई कि कितनी पत्रिकाएँ या चित्र कथाएँ प्रत्येक कक्षा में कम हुई हैं। 7 कक्षाओं में से 3 में एक भी कम नहीं निकली, एक-दो में नगण्य-सी संख्या थी। सबसे अधिक एक कक्षा में 13 पुस्तकें कम पाई गईं। इनका गायब होना हमारे लिए चिंता का विषय था। इस कक्षा में छात्रावासी विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। थोड़ा बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि बच्चे जब पढ़ते हैं और घंटी बजने पर कोई कहानी अधूरी रह जाती है तो वे उसे ले जाते हैं। दूसरे दिन वही पत्रिका हाथ आए या न आए, उन्हें संशय रहता है। चोरी करना उनका इरादा नहीं होता पर वापस लाने का संपत्त नहीं बनता। कुछ छात्रावासी बच्चों ने कुछ पत्रिकाएँ लाकर दी कि ये अमुक-अमुक जगह पड़ी हुई थी। बच्चों को समझाया गया। यह बात भी निकलकर आई कि छात्रावास में अपने खाली समय में भी वे पढ़ना चाहते हैं। एक सेट वहाँ भी रखवा दिया गया। यह संतोष का विजय था कि बच्चे पढ़ने में रुचि लेने लगे थे किंतु अभी भी पत्रिकाएँ और चित्र कथाएँ अधिक पढ़ते थे। पुस्तकें पढ़ने में उनकी रुचि कम दिखाई दी।

आगामी सत्र में जो नई पुस्तकें खरीदी गईं, प्रभारी अध्यापिका ने उन्हें प्रार्थना सभा के पश्चात् बच्चों को प्रदर्शित किया और अति संक्षेप में उनके बारे में जानकारी भी दी। बाहर निकलते ही कुछ बच्चों ने उन्हें पढ़ने में अपनी रुचि बताई और इश्यू करवाना चाहा। एक प्रयोग और किया गया पुस्तकालय में बड़ी मेज़ और रैक पर पुस्तकों का दो दिन तक प्रदर्शन किया गया और बच्चों से कहा गया कि वे सारी पुस्तकें देख कर अपनी डायरी में वरीयता क्रम में उन पुस्तकों के नाम लिखें, जिन्हें वे पढ़ना चाहते हैं। बच्चों की रुचि निरंतर बढ़ रही थी। दल अध्यापकों ने उनको प्रोत्साहित करने के लिए दल-बैठकों में इस बारे में पूछना शुरू किया कि पिछले दिनों उन्होंने कौन-कौन सी किताबें पढ़ीं?

उन्हें क्या चीजें अच्छी लगें। कौन सी कहानी पसंद आई और क्यों? कभी-कभी बच्चों को उनकी पढ़ी हुई कहानी सुनाने के लिए भी कहा गया।

कक्षा पाँच के दोनों वर्गों में चौंक मैं ही हिंदी पढ़ाती थी अतः मैंने बच्चों को इस हेतु प्रोत्साहित किया कि वे एक कॉपी या डायरी 'मेरा संग्रह' नाम से बनाएँ और जो कविता, अनमोल वचन या कोई गद्यांश उन्हें बहुत अच्छा लगे उसे उसमें उतार लें, कॉपी के पीछे के पृष्ठ पर पठित पुस्तकों की सूची भी बनाएँ। मैंने स्वयं अपना संकलन उन्हें दिखाया। इससे कुछ बच्चे प्रेरित अवश्य हुए, किंतु सभी ने ऐसा किया यह नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार "साहित्य भी बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ा सकता है। कोई कहानी, कविता या गीत सुनकर बच्चे भी स्वयं कुछ लिखने की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं। उनको इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अलग-अलग रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों को आपस में मिलाएँ।"

शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों को ही इस बात के लिए प्रोत्साहित और प्रशिक्षित करने की ज़रूरत है कि वे पुस्तकालय को अधिगम, आनंद एवं तन्मयता के साधन के रूप में इस्तेमाल करें। स्कूल पुस्तकालय की संकल्पना एक ऐसे बौद्धिक स्थल के रूप में की जानी चाहिए जहाँ शिक्षक, विद्यार्थी और निकटस्थ समुदाय के लोग ज्ञान के गहरे अर्थों और कल्पनाशीलता की तलाश में आएँ। किताबों के सूचीकरण और अन्य व्यवस्थाओं को वहाँ इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिए कि बच्चे आत्मनिर्भर रूप से पुस्तकालय का उपयोग कर पाएँ।

आमतौर पर विद्यालय में सत्रांत से पूर्व नई पुस्तकें खरीदी जाती थीं, हम लोगों ने इसे मध्य सत्र में करने का निर्णय लिया। शहर के बुक स्टोर्स वालों को स्कूल में आकर स्टॉल्स लगाने हेतु आमंत्रित किया गया। बच्चों को यह सूचना दी गई कि वे उन पुस्तकों को देखें और जो पुस्तकें अपने पुस्तकालय में मँगवाना चाहते हैं, उनके नाम कक्षा पुस्तकालय लीडर्स को बता दें। लीडर्स अपनी कक्षा की सूची शिक्षिका प्रभारी तक पहुँचा देंगे। जो बच्चे स्वयं पुस्तकें खरीदना चाहें वे भी वहाँ पर क्रय कर सकता है। कक्षावार विद्यार्थियों ने अपने दल अध्यापक-अध्यापिकाओं के साथ पुस्तक मेले को देखा। कुछ ने पुस्तकें खरीदीं भी। अपनी पसंद की पुस्तकों के नाम लीडर्स को नोट कराएँ और इस तरह पुस्तकों में रुचि बढ़ाने और खरीद में बच्चों की सक्रिय भागीदारी बनाने में हमें सफलता मिली।



पुस्तकों का खजाना – बच्चों का पुस्तकालय

रमेश दवे*

जो बच्चे किताब से प्यार करने लगते हैं उन्हें किताब की भूख उसी तरह लगती है जैसे रोटी की। कई बार तो अपनी पसंद और आनंद की किताब पाकर वे रोटी की भूख भी कुछ देर के लिए भूल जाते हैं।

जहाँ तक पुस्तकालयों का सवाल है अभी तक न जाने क्यों यह धारणा बनी हुई है कि पुस्तकालय तो सिर्फ़ बड़ी कक्षाओं के लिए ही होती हैं। पुराने जमाने में कुछ मिडिल स्कूलों में छोटे पुस्तकालय होते थे मगर उनमें बड़ी पुस्तकें मिल जाती थीं। ‘अंधेरनगरी और चौपट राजा’ जैसा नाटक तो लगभग हर स्कूल की लाइब्रेरी में होता था। बच्चों की कविताओं के साथ-साथ हिंदी साहित्य के बड़े कवि जैसे मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, निराला, पंत, प्रसाद इनकी किताबें भी मिल जाती थीं। कुछ धार्मिक किताबें भी होती थीं जैसे रामचरितमानस। न कोई धर्म या धर्मनिरपेक्षता के सवाल उठाता था और न किताब की नीति-कथाओं पर आपत्ति। पंचतंत्र, हितोपदेश, विक्रम बेताल, सिंहासन बत्तीसी जैसी किताबें उन दिनों भी लाइब्रेरी में होती थीं और अब भी खरीदी जाने लगी हैं।

हाई स्कूल या हायर सेकेंडरी में कुछ बड़ी लाइब्रेरी होती थीं जिनमें कुछ ज़्यादा विषयों पर किताबें हुआ करती थीं यहाँ तक कि सेकेंडरी स्तर पर एक लाइब्रेरियन भी होता था जो किताबों का देन-लेन करता था। जहाँ नहीं होता था वहाँ कोई अध्यापक यह काम करता था। लेकिन प्राथमिक शालाओं में न पहले पुस्तकालय थे और न आज होते हैं।

न जाने क्यों और न जाने किस शिक्षाशास्त्री ने ऐसा किया कि बच्चों को बचपन से किताबें पढ़ने का सही अधिकार दिया ही नहीं। न उनके लिए अच्छी किताबें, न उनकी कोई लाइब्रेरी और न उन्हें किताबें पढ़ने के स्कूल या समाज में कोई अवसर। एक बच्ची या बच्चे को कोर्स की किताब को छाती से चिपकाए बड़ा होना होता था और जो बचपन सबसे ज़्यादा जिज्ञासा, उत्साह और सीखने का समय है, उस समय बच्चे एक ही पुस्तक से सिर लड़ाते रहते थे।

* एस. एच. 19, ब्लॉक नं. 8, सहयाद्री परिसर, भदभदा रोड, दुष्यंत मार्ग, भोपाल-462003

स्कूलों, शिक्षकों, शिक्षाविदों और शिक्षा की व्यवस्था करने वालों में ऐसा बाल-मनोविज्ञान कैसे पैदा हो गया कि उन्होंने बच्चों के अच्छे, सुंदर, सजे-धजे और उनकी पसंद और आनंद के पुस्तकालय की कल्पना की ही नहीं? आज़ादी के आंदोलन के दौरान लोग घरों से जाकर पत्रिकाएँ एकत्रित करते थे, मगर आज़ादी के बाद स्कूल, समाज और किताब तीनों अलग हो गए। ऐसा क्यों?

गिजुभाई बधेका ने पहली बार जब बाल-मंदिर खोला तो स्कूल की छवि को बदलने की कोशिश की। पहले तो उन्होंने खेलते-खेलते भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, व्याकरण, कहानी आदि सब कुछ पढ़ाकर यह साबित कर दिया कि बिना किताब के भी पढ़ाई हो सकती है। दूसरे, उन्होंने स्कूल को डर-मुक्त किया। वे ऐसे शिक्षक बने कि बच्चे उन्हें प्यार से मूँछों वाली माँ कहने लगे। क्या इतना प्यार आज कोई भी शिक्षक स्कूल में अपने बच्चे को देती या देता है? जब हम बच्चों से ही प्यार करना नहीं सीखेंगे तो उन्हें प्यार की शिक्षा कैसे देंगे, उन्हें प्यार की पुस्तकों से कैसे जोड़ेंगे?

बच्चों के लिए किताबें केवल शब्दों या वाक्यों का भंडार नहीं है। किताबों में उनकी परियाँ हैं, उनके हाथी, घोड़े, शेर, खरगोश हैं। किताबों में वे तितली और गिलहरी के पीछे दौड़ते हैं, किताबों में उन्हें कोयल की कुहू सुनाई देती है। किताबों में वे हवा का संगीत सुनते हैं, फूलों की सुगंध महसूस करते हैं और खटमीठे फल खाते हैं। कभी वे किताबों की नदी में तैरते हैं तो कभी किताबों के पहाड़ पर चढ़ते हैं। कभी किताबों का समुद्र उन्हें बुलाता है, तो कभी वह किताबों के आसमान में तारे गिनने लगते हैं, सूरज और चाँद का उजाला और गर्मी अपनी किताबों के अंदर देखते और महसूस करते हैं। लेकिन इतना सब उनको उनकी कोर्स की किताबें नहीं देतीं। इसके लिए एक बाल-पुस्तकालय ज़रूरी है। गिजुभाई ने खिलौनों के अलावा बच्चों का किताबघर भी बनाया था। उनके बैठने और अपने आप किताब निकाल कर पढ़ने की ऐसी व्यवस्था की थी कि बच्चे अपनी पसंद की किताब खुद चुन लें और पढ़ें। फिर गिजुभाई किताब में क्या पढ़ा, इसका खेल इस तरह खिलवाते थे कि हर बच्ची और बच्चा उसने जो पढ़ा है उसे सुनाने को आतुर रहता था।

जिन स्कूलों कालेजों में किताबें लाइब्रेरी की अलमारियों में कतारबद्ध जमी हैं, और जो बच्चों या किशोरों के हाथों में नहीं गईं, उन किताबों पर धूल चढ़ी होती है। जो शिक्षक, प्राचार्या, हेडमास्टर बच्चों को शिक्षा पुस्तकों से देते हैं, वे

पुस्तकों से शायद सबसे ज़्यादा नफरत करते हैं। वे अध्यापक क्या हो गए, ऐसा मानने लगते हैं जैसे दुनिया भर का ज्ञान उन्हें हो गया। जब शिक्षक खुद नहीं पढ़ते तो किताबों से प्रेम क्या खाक करेंगे! जो शिक्षक पढ़ते नहीं, किताबों से अपने को जोड़ते नहीं, अपना ज्ञान बढ़ाते नहीं, वे कठोर और कभी-कभी क्रूर हो जाते हैं। उनके जीवन का रस सूख जाता है। प्रसिद्ध लाइब्रेरियन रंगनाथन तो कहते थे कि लाइब्रेरी किसी भी संस्था के अंदर एक मंदिर है। उस मंदिर में किताब देवी देवता के समान हैं। एक लाइब्रेरी के देवता भी पत्थर की तरह सख्त हो जाते हैं, अगर इनसे बोलो नहीं, बातचीत न करो। किताबें हमें बुलाती हैं, वे हमसे बात करना चाहती हैं। वे अपने आपको हमारे सामने खोलना चाहती हैं। उनसे इतिहास की धड़कनें सुनो, पृथ्वी के घूमने की आवाज़ सुनो, भूकंप की थरथराहट देखो, विज्ञान की प्रयोगशाला देखो। क्या नहीं है किताबों में जो हमारे जीवन में है?

स्कूल डर की व्यवस्था है। किताबें उस डर की व्यवस्था को प्रेम के संसार में बदलना जानती हैं। शिक्षा का धर्म ज्ञान है तो ज्ञान का साधन किताबें, ज्ञान की पूजा किताबें। किताबें अन्याय से लड़ना सिखाती हैं, शोषण और गुलामी से मुक्ति का रास्ता दिखाती हैं, कर्म और श्रम की इज्जत करना सिखाती हैं। वे खेल भी हैं, खिलौना भी हैं।

अगर प्राइमरी स्कूलों में बच्चों का एक ऐसा प्यार भरा संसार पैदा हो जाए जो किताबों से रचा गया हो तो सारी दुनिया बच्चों को एक किताब की तरह लगेगी। वे किताबों में झूलेंगे, किताबों में यात्रा करेंगे और किताबों में जासूस और भूत बनेंगे।

कई विकसित देशों ने बच्चों के पुस्तकालय बना दिए हैं। एक बार आस्ट्रेलिया के एक गाँव केलीस प्लेन में एक नर्स अपने घर में एक पक्षी लेकर आई। पक्षी कुछ कुछ तीतर जैसा लगता था और उसका मुँह मेढक जैसा था। वह पक्षी उसके घर के आँगन में एक पेड़ के नीचे गिर गया था। नर्स ने उसे पाला और बड़ा किया। फिर एक दिन वे इस विचित्र पक्षी को बच्चों को दिखाने ले गई स्कूल में। बच्चे देखकर कौतुहल से भर उठे। हर कोई पक्षी को छूने लगा। अध्यापक ने उसकी ऊँचाई और वजन नपवाया। अब उस पक्षी का नाम न अध्यापक को पता था न नर्स को। अध्यापक ने कहा, जाओ लाइब्रेरी से पक्षियों का विश्वकोष निकाल कर लाओ। दो-चार बच्चे एक साथ दौड़े और पक्षी-कोष लेकर आ गए।

उस आकार का पक्षी, उस रूप का, रंग का और मेढक जैसे मुँह का पक्षी जब बच्चों ने खुद खोजा उस कोष से, तो वे अपनी खोज पर इतने खुश हुए कि टीचर को पढ़कर सुनाने लगे और बताने लगे कि इस पक्षी का नाम फ्रागमाउथ है। और उस पर कई ऐसी जानकारियाँ दीं जो शिक्षक और उस नर्स को भी नहीं मालूम थीं।

इस तरह एक किताब शिक्षक की भी शिक्षक बन गई। एक लाइब्रेरी हमारी शिक्षक भी है। जो हम नहीं जानते, वह किताबें बता देती हैं।

मैडम, बात तो सच है मगर इतनी किताबें लाएँ कहाँ से स्कूलों में? ले भी जाएँ तो रखें कहाँ? रख भी दें तो हमें उनका उपयोग क्या करने दिया जाएगा? स्कूल में तो हर बात के लिए मना किया जाता है, क्या वहाँ हमें अपनी मर्जी से किताब पढ़ने का मौका दिया जाएगा?

क्यों नहीं पढ़ने दिया जाएगा? किताबें आने तो दो जगह भी हो जाएगी, मौका भी मिलेगा और तुम अकेले ही क्या पूरा गाँव, मोहल्ला, शहर यहाँ आकर किताबें पढ़ सकेगा। चाहेगा तो घर भी ले जा सकेगा।

यह बहुत ही अच्छी लाइब्रेरी है। इसमें किताबें भी समाज से, शहर से या दुकानों से लाई जाती हैं और झोला लेकर लोग घर-घर जाते हैं और बच्चों की किताब उन्हें देते हैं। इस तरह लाइब्रेरी खुद बच्चों के पास पहुँचती है। जब किताब खुद चलकर तुम तक आएगी तो तुम और तुम्हारे घर के लोग पढ़ेंगे जरूर।

वैसे स्कूल में एक कमरा किताबों का बन सकता है। वहाँ पढ़ाई भी हो सकती है और स्कूल के बाद लाइब्रेरी भी चल सकती है। अगर बच्चे चाहें तो स्कूल समय में भी पढ़ सकते हैं।

मगर मैडम, स्कूल में किताबें रखेंगे कहाँ?

यह तो पहले ही बता चुकी हूँ। हम डोरियाँ बाँधकर कुछ पतली और छोटी किताबें लटका देंगे। बच्चे स्वयं देखेंगे और चुन लेंगे। बड़ी किताबों के लिए या तो पाकेट बोर्ड बना लेंगे या समाज से सहयोग लेकर कुछ खोखे लाकर उनके रैक्स बना लेंगे। मगर यह करना होगा हमें ही। कोई सरकार करने नहीं आएगी यह काम। अगर समाज और स्कूल मिल जाएँ, तो बहुत सारे कामों में सरकार की जरूरत ही न पड़े।

अगर स्कूल ऐसा है जिसमें कक्षा एक से आठ तक या दस तक की क्लासें हैं तो यह काम और भी सरल हो सकता है। बड़े और छोटे बच्ची-बच्चे मिलकर

अपनी लाइब्रेरी खुद बना सकते हैं और शिक्षक उसमें सहयोग दे सकते हैं। बच्चे ही लाइब्रेरी का संचालन भी कर सकते हैं।

मैडम, मगर हमको अगर यह काम नहीं करने दिया गया तो?

ऐसे कैसे होगा। पहले काम करना शुरू करो फिर शिकायत या शक करो। हम लोगों की एक आदत यह है कि हम काम शुरू करने के पहले शक और शिकायत करने लगते हैं। यही वजह है कि स्कूल डर के ही घर नहीं हैं बल्कि शक और शिकायतों के भी थाने बन गए हैं जहाँ शिक्षक थानेदार की तरह व्यवहार करते हैं।

तुम्हारा बाल पुस्तकालय जब तुम्हारे जैसा होगा, तो उसमें तुम्हारे सपने भी होंगे, तुम्हारे सच भी। किशोरों की उमंग होगी और युवाओं की मस्ती। पुस्तकों को तुम लाओ, पुस्तकें तुम्हें बुलाएँगी। जिस देश में पुस्तक और पुस्तकों की संस्कृति जिंदा है, वह कभी अज्ञानी नहीं हो सकता। इन्हें कैसे पढ़ें, सोचो!



अशोक की कहानी

कृष्ण कुमार*

अशोक पढ़ना चाहता था। उसके परिवार में कभी कोई स्कूल नहीं गया था। पिता ज़मीन के छोटे-से टुकड़े पर खेती करते थे, अनपढ़ थे। अशोक ने कई बार ज़िद की, माँ को समझाया और अंत में पिता मान गए कि उसे पास के कस्बे के प्राइमरी स्कूल में भर्ती करा देंगे।

पहले दर्जे में हिंदी के अंतर्गत अध्यापक ने वर्णमाला सिखाई। एक-एक अक्षर की आवाज़ हफ़्तों रटाई, अक्षरों की आकृति बनाना सिखाया। जिन बच्चों को दिक्कत आती थी उनका हाथ पकड़ कर सिखाया। स्कूल में एक छोटा-सा ब्लैकबोर्ड था- खूब घिसा हुआ, चाक के बारीक कणों से इस कदर ढका हुआ कि लिखाई देखने के लिए सिर की नसों का सारा ज़ोर पुतली पर केंद्रित करना होता था। यह ब्लैकबोर्ड अगस्त से अक्टूबर तक वर्णमाला की आकृतियों से ढका रहा बच्चे एक-एक अक्षर की आकृति बीसियों बार उतारते। इस तरह अंत में अशोक ने सारी हिंदी वर्णमाला सीख ली।

अब अध्यापिका ने पाठ्यपुस्तक की तरफ़ ध्यान दिया जिसमें हर अक्षर के पास एक शब्द लिखा था और एक चित्र बना था। **क** के पास लिखा था 'कबूतर'। अशोक शुरू से जानता था कि **क** का मतलब होता था 'कबूतर'। इसलिए जब बहनजी ने अक्षर जोड़कर कबूतर पढ़ना सिखाना चाहा तो अशोक बहुत खुश हुआ। पर उसे यह नहीं समझ में आया कि दरअसल बहनजी के लिए 'क', 'बू', 'त' और 'र' का कुल योग कबूतर है। अशोक के दृष्टिकोण से **क** 'कबूतर' था। बहनजी के पास इतना समय नहीं था कि अशोक का दृष्टिकोण समझे। 'अशोक का भी कोई दृष्टिकोण है'- यह बात वे जानती थी या नहीं, मैं कह नहीं सकता। बहर-हाल उन्होंने सोचा कि अशोक **क** के साथ लिखे शब्द को देखकर 'कबूतर' कह रहा है यानी वह पढ़ना सीखने लगा है।

इसी तरह अशोक ने बाकी सब अक्षरों के साथ लिखे शब्द पढ़ना सीख लिया। अक्षरों की आकृतियाँ स्लेट और कॉपी पर उतारना तो वह पहले ही सीख

* निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली-110 016

चुका था। पहले दर्जे का अंत होते-होते वह अपनी प्रगति से काफ़ी खुश था। जब वह दूसरी में आया और कक्षा में उससे किताब पढ़ने को कहा गया तो वह इस तरह बोला-

‘कबूतर का क, मटर का म, लंगूर का ल, **क-म-ल**। हर बार उसे इस तरह पढ़ते देखकर अध्यापिका कुछ नाराज़ हुई। अशोक के हर प्रयास के बाद अध्यापिका उससे कहती-‘दूसरे बच्चों को ध्यान से सुनो, उनकी तरह पढ़ो।’ अशोक दूसरे बच्चों को बहुत ध्यान से सुनता, पर यह समझने में असमर्थ रहता कि वह कहाँ गलती कर रहा है। उसे लगता कि दूसरे ठीक उसकी तरह पढ़ रहे हैं। यही शब्द वे पढ़कर सुना रहे हैं। फिर बहनजी उससे क्यों नाराज़ हैं? सौभाग्यवश बहनजी और भी कुछ बच्चों पर खीझती थीं, इसलिए अशोक अपने को एकदम अकेला नहीं पाता था। किसी तरह उसने दूसरी कक्षा के सारे दिन काट लिए। धीरे-धीरे उसकी **क** से कबूतर कहने की आदत भी कम हो गई। अब वह इस तरह पढ़ता था-

ग पे उ की मात्रा गु

ल पे आ की मात्रा ला

ब

क पे आ की मात्रा का

फ पे बड़े ऊ की मात्रा फू

ल

गु-ला-ब का फू-ल

बहनजी उसे कभी-कभार ही पढ़ने को कहतीं, अक्सर उनके पास की टाटपट्टी पर बैठे बच्चे ही पूरा पाठ पढ़ देते। पर अशोक इस बात से उदास नहीं था। उसने एक पूरी कविता याद कर ली थी। दूसरी कक्षा के अंतिम दिनों में जब किताब दोहराते वक्त इस कविता को पढ़ने का नंबर आया तो अशोक ने बगैर सही पेज खोले पूरी कविता पढ़कर सुना दी। बहनजी उससे गुस्सा थीं कि उसने सही पेज क्यों नहीं खोला। अशोक खुश था कि वह बिना किताब देखे पढ़ने लगा है। उसके और बहनजी के दृष्टिकोणों का विरोध तीखा होता जा रहा था।

आखिरकार तीसरी कक्षा शुरू हुई। अशोक के गाँव के कई बच्चे स्कूल आना छोड़ चुके थे। उस पर भी दबाव पड़ा, पर वह अड़ा रहा। वह चाहता

था कि जल्दी-जल्दी स्कूल खत्म करके पैसे कमाए। बहनजी कई बार कक्षा में बता चुकी थीं कि जो बच्चे स्कूल में आगे बढ़ते रहेंगे वे खूब बड़े आदमी बनेंगे और पैसे कमाएँगे।

पर तीसरी कक्षा की शुरुआत से ही विघ्न पड़ने लगे। 'भूगोल' नाम का एक नया विषय शुरू हुआ। अशोक को भूगोल की किताब में कुछ पल्ले नहीं पड़ा। पहले पेज पर लिखा था, "हमारा ज़िला ऊबड़-खाबड़ और पथरीला है। ...यह कर्क रेखा से कुछ ऊपर स्थित है। ...इसकी भू-रचना पठारी प्रकार की है।" कक्षा के कई बच्चे यह फर्फटे से पढ़ना सीख चुके थे। वे खड़े होकर पढ़ते, फिर कॉपी में उतारते। अशोक धीरे-धीरे पढ़ने की कोशिश करता तो बहनजी अधीर हो उठतीं। यही हालत एक और नए विषय 'विज्ञान' की घंटी में हुई। महीने भर में बहनजी अशोक से इतना परेशान हो गई कि उन्होंने उससे कुछ भी कहना छोड़ दिया। उनकी अधीरता और नाराज़गी का धागा, जिससे अशोक अभी तक बंधा था, उदासीनता में बदल गया। अशोक को लगा कि बहनजी को अब उससे कोई मतलब नहीं है। दिवाली की छुट्टी के बाद वह वापस स्कूल नहीं गया।

कुछ वर्ष बाद जिले में एक सर्वेक्षण हुआ। प्रांतीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद् की ओर से दो सर्वेक्षक लंबे-लंबे फॉर्म लेकर आए। सर्वेक्षण का उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्राथमिक शिक्षा में 'ड्राप-आउट' की दर इतनी ऊँची क्यों है? सर्वेक्षकों ने कई गाँव चुने और वहाँ जाकर माता-पिताओं के इंटरव्यू लिए। इस तरह स्कूल छोड़ने वाले सैकड़ों बच्चों के आँकड़े उनके शैक्षिक अनुसंधान की पकड़ में आ गए।

शिक्षा का कोई सर्वेक्षण हो रहा है, यह मुझे मालूम था। जब मुझे सर्वेक्षण का ठीक-ठीक उद्देश्य मालूम हुआ तो मैं आलस त्यागकर, अपना कौतूहल लिए सर्वेक्षकों से मिलने जा पहुँचा। उनका काम पूरा हो चुका था और वे जाने की जल्दी में थे। मैंने आग्रह किया कि वे मुझे अशोक की 'डेटा-शीट' दिखा दें। मैं यह जानने को बेहद उत्सुक था कि देश के आँकड़ों में अशोक का 'केस' किस तरह प्रस्तुत होगा। सैकड़ों बच्चों के पिताओं की 'डेटा-शीटों' में से एक को ढूँढ़ निकालने में सर्वेक्षक-बंधु आनाकानी कर रहे थे। मैंने बातचीत के दौरान अपनी हैसियत और डिग्री का जिक्र किया तो वे तैयार हो गए। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब अशोक के पिता की 'डेटा-शीट' मिली तो उसे पढ़कर यह साफ़ निष्कर्ष निकलता था कि अशोक ने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में, अपने पिता का

हाथ बँटाने के लिए पढ़ना छोड़ा। सर्वेक्षण के समूचे विश्लेषण में अशोक की गणना 'परिवार की आर्थिक स्थिति' से प्रभावित 'ड्राप-आउट' बच्चों में की गई। अशोक एक ग्रामीण बाल श्रमिक घोषित हुआ।

मेरी आँखों में आँसू देखकर सर्वेक्षक-बंधु कुछ घबरा गए। वे बोले 'क्या यह बच्चा आपके रिश्ते में आता है?' मैंने कहा 'नहीं, पर मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे लगता है आप उसका केस ठीक से समझ नहीं पाए हैं।' सर्वेक्षक ने कहा 'अब एक-एक केस को कहाँ तक समझा जाए?' फिर कुछ बात बदलकर वह बोला 'आप तो दिल्ली में रहते हैं, नई शिक्षा नीति कब से लागू होने वाली है?



पढ़ने की दहलीज़ पर

लता पाण्डे*

बात आज की हो या दशकों पूर्व की, पढ़ने की दहलीज़ पर अभी-अभी कदम रखने वाले बच्चे के लिए पढ़ना सबसे बड़ा चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। बात पहली पीढ़ी के नन्हें पाठकों की हो तो उनके लिए यह कार्य और भी अधिक कठिन हो जाता है। ऐसा नहीं है कि पढ़ना अपने आप में कोई दुरूह कार्य है पर पढ़ाने की नीरस और उबाऊ पद्धतियाँ और इन पद्धतियों में हमारा परंपराजनित अंधविश्वास ही पढ़ने को जटिल और दुरूह बना देता है। नीचे दी गई घटनाओं पर गौर करें – क्या वर्ष-दर-वर्ष बीत जाने पर भी इन स्थितियों के बने रहने से बच्चा पढ़ने की दहलीज़ के पार भी उम्मीदों के वृहद् संसार को देख पाएगा।

घटना-1

बात लगभग बीस-पच्चीस साल पहले की है। परिषद् की एक सदस्या एक स्कूल के दौरे पर गईं तो उन्होंने एक बच्चे से कुछ पढ़ने को कहा। बच्चे ने तुरंत पूछा— किताब से पढ़ूँ या बिना किताब के।

घटना-2

कुछ दिन पहले एक दूसरी कक्षा की बच्ची से पूछा— पढ़ना आता है?

बच्ची तपाक से बोली — हाँ।

बच्ची से पूछा अगला सवाल — क्या पढ़कर सुनाओगी?

जो चाहे पढ़वा लो — बच्ची ने भरपूर आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया।

बच्ची को पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तक दी गई। पूर्ण आत्मविश्वास से भरपूर बच्ची एक शब्द भी ठीक से नहीं पढ़ पाई।

दोनों वाक्यों में लगभग पच्चीस वर्षों का अंतर है। साल-दर-साल समय गुज़रता चला गया लेकिन पढ़ने के संदर्भ में बच्चों की स्थिति जस-की-तस बनी हुई है। अधिकांश शिक्षक पाठ्यपुस्तक पढ़ा कर किसी तरह पाठ्यक्रम पूरा करने को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान बैठते हैं। यह जानने की कोशिश ही नहीं

* रीडर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

की जाती कि क्या बच्चे ने सही अर्थों में पढ़ना सीख लिया है? क्या पढ़े हुए का अर्थ वह समझ पा रहा है। यही कारण है कि हमारे विद्यालय बच्चों को पढ़ने का वह आनंद नहीं दे पाते, जो उनको स्थायी पाठक बना सके।

पढ़ना एक ऐसा कौशल है जो एक बार सही ढंग से बच्चे में विकसित हो गया तो बच्चा स्थायी पाठक बनकर ही रहेगा। फिर पढ़ना ही उसके लिए दुनिया में सबसे अधिक आनंददायी काम होगा। उसे नई-नई किताबें ढूँढ़ने, उन्हें पढ़ने में रस मिलेगा। एक किताब पढ़कर खत्म करने के बाद दूसरी किताब पढ़ने की ललक जगेगी। किताब पढ़ने के बाद वह उसके पात्रों के, उसकी विषयवस्तु के बारे में सोचेगा। उसका मन करेगा कि किसी और से पढ़ी गई किताब के बारे में बात करे। एक बार पढ़ने की भूख जग गई तो जीवनपर्यंत बनी रहेगी।

लेकिन आज की शिक्षा व्यवस्था बच्चों में पढ़ने के लिए ऐसी भूख जगाने में असमर्थ है। बच्चे के लिए पढ़ना सीखने की ओर बढ़ने की दिशा में सबसे अधिक निरुत्साही तत्त्व है — पढ़ना न सीख पाना। स्कूल में दाखिला पाने के कुछ समय बाद बच्चा पहला वाक्य जब पढ़ता है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर आत्मविश्वास झलक उठता है — ‘हाँ, मैं पढ़ सकता हूँ।’ इसके विपरीत अगर बच्चे को एक वाक्य भी पढ़ने की खुशी नहीं मिलती तो उसका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है। उसे लगता है कि पढ़ना बहुत कठिन काम है जिसे वह कभी नहीं सीख पाएगा। वह इस न पढ़ पाने की परेशानी से बाहर निकलना चाहता है पर लड़खड़ाता आत्मविश्वास फिर उसे डुबोने लगता है। डूबते-उबरते उसकी घबराहट और बढ़ जाती है। दुष्परिणाम यह होता है कि पढ़ना सीख पाना उसके लिए और भी कठिन होता चला जाता है। पहली कक्षा में आने के बाद तीन-चार माह तक बच्चा पढ़ना न सीख पाए तो कई बार शिक्षक उसे बुद्धिहीन तक घोषित कर देते हैं। एक ओर कक्षा में पढ़ सकने वाले साथी बच्चों के सामने उसे उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है, दूसरी ओर घर में भी डाँट सुनने को मिलती है ‘इतने दिन हो गए स्कूल जाते-जाते, अभी तक एक वाक्य ठीक से नहीं पढ़ पाता है। बेकार है इसे स्कूल भेजना।’ स्कूल और घर दोनों ही स्थानों पर मिलने वाले अपमान से बच्चा टूट-सा जाता है। पढ़ना न सीख पाने का दंश उसे सालने लगता है। बच्चा स्वयं को लाचार महसूस करता है। लाचारी इतनी बढ़ती है कि उसका स्कूल जाने का मन ही नहीं करता।

शुरुआती दौर यानी कि पहली-दूसरी कक्षा में जो बच्चे पढ़ने में असफल रहते हैं, आगे जाकर इस नाकामी को दूर करना उनके लिए और भी दुरूह हो जाता है।

बच्चा ठीक से नहीं पढ़ पा रहा है या बच्चे की सीखने में गति धीमी है तो कई बार शिक्षक द्वारा यह मान लिया जाता है कि इस बच्चे पर ध्यान देना समय की बर्बादी है क्योंकि यह तो कभी सीख ही नहीं पाएगा। अगर हम आते ही बच्चे को नकारते हैं तो शुरुआत में ही बच्चा हतोत्साहित हो जाएगा और एक लड़खड़ाते आत्मविश्वास वाले बच्चे से कुछ पढ़ने, कुछ सीखने की उम्मीद क्या कभी की जा सकती है?

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत किए जा रहे प्रयासों के फलस्वरूप पहली कक्षा में बड़ी संख्या में बच्चे दाखिला ले रहे हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में बच्चों के लिए कई योजनाएँ हैं— मिड डे मील, मुफ्त गणवेश, पाठ्यपुस्तकें आदि। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से प्रतिवर्ष शिक्षकों के लिए कितने ही प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं लेकिन फिर भी बच्चों की उपलब्धि के आँकड़े संतोषजनक नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण है — बच्चों को प्यार, भरोसा और आत्मीयता नहीं मिल पाना। बच्चे सही मायनों में पढ़ना सीख पाएँ इसके लिए शिक्षकों को ज्ञान के सिद्धांतों की जानकारी से अधिक इस बात का अहसास होना ज़रूरी है कि पढ़ना सिखाने की बुनियाद प्यार, भरोसा और आत्मीयता है। इनके बिना ज्ञान का कोई भी सिद्धांत पढ़ना नहीं सिखा सकता है।

प्यार, भरोसा और आत्मीयता ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें किसी योजना के तहत बच्चों को नहीं दिया जा सकता है। इनका न तो कहीं से बंदोबस्त हो सकता है, न ही इन्हें खरीदा जा सकता है और न ही इनका कहीं से प्रबंधन ही किया जा सकता है। हाँ, इन तीनों का प्रबंध कोई कर सकता है तो वह है शिक्षक। शिक्षक का बच्चे से प्यार, उसके प्रति विश्वास तथा उससे आत्मीय व्यवहार ही बच्चे में पढ़ने का कौशल सही ढंग से विकसित कर सकता है। बच्चे को स्नेह देने, उस पर भरोसा करने के साथ शिक्षक उससे इस प्रकार आत्मीयता के साथ पेश आए कि बच्चे को लगे कि विद्यालय में भी कोई उसका अपना है। हर बच्चे को लगे कि शिक्षक उस पर ध्यान दे रहा है। उसे यह महसूस हो कि हाँ, यह मेरे लिए हो रहा है।

पढ़ने का कौशल इसी आत्मीयता का याचक है। पहली कक्षा में पढ़ना सिखाने के लिए कई आत्मीय गतिविधियों की ज़रूरत है। ये आत्मीय गतिविधियाँ

बौद्धिक, शारीरिक और भावनात्मक जुड़ाव की माँग करती हैं। पढ़ना सही ढंग से सीखने के लिए यह निहायत ज़रूरी है कि हर बच्चे को शिक्षक पर्याप्त समय अलग से दे। ऐसी चंद घड़ियाँ—जब केवल शिक्षक और बच्चा हो। शिक्षक का सान्निध्य मिले तो बच्चे के लिए पढ़ना सीखना सरल हो जाएगा।

पढ़ने का कौशल बच्चे में ऐसे गुण विकसित करता है जो कोई और कौशल नहीं कर सकता। दरअसल पढ़ने का कौशल सभी आधारभूत कौशलों की जननी है जो मनुष्य के विकास के लिए ज़रूरी है। बच्चे ने पढ़ने के कौशल को सीख लिया तो उसमें आत्मविश्वास बढ़ेगा। यही बढ़ता आत्मविश्वास बच्चे के व्यक्तित्व में निखार लाएगा। यह तभी संभव है जब बच्चे को शिक्षक का सहयोग मिले।

इसीलिए पढ़ने की दहलीज़ पर कदम रखने वाले नन्हे कदम सुखद उम्मीदों और असीम संभावनाओं का द्वार खुलने से पहले ही कहीं मायूस होकर लौट न जाएँ यही शिक्षा और शिक्षा से जुड़े सभी लोगों का पहला सरोकार होना चाहिए।



टिप्पणी

टिप्पणी



पढ़ना है समझना

एनसीईआरटी से शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए स्वयं पढ़ी जाने वाली क्रमिक पुस्तकमाला

बरखा

बरखा में हैं चालीस कहानियाँ।

कहानियाँ चार स्तरों में विकसित हैं।

कहानियाँ बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभवों और परिवेश से संबंधित विषयों पर आधारित हैं।

यह पुस्तकमाला बच्चों को समझ के साथ पढ़ने के अवसर देगी।

यह पुस्तकमाला बच्चों में आत्मविश्वास जगाएगी – हाँ, मैं पढ़ सकती/सकता हूँ।

बरखा की कहानियों को पढ़ने से बच्चों में अधिक से अधिक पढ़ने की ललक जगेगी।

बरखा बच्चों को पढ़ने का आनंद देते हुए स्थायी पाठक बनने की ओर ले जाएगी।



क्रमिक पुस्तकमाला—बरखा एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली से प्रकाशित है। इसकी एक पुस्तक का मूल्य ₹ 10 तथा चालीस पुस्तकों के सैट का मूल्य ₹ 400 है। एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग से यह पुस्तकमाला प्राप्त की जा सकती है।



3267

विषय: 5 प्रारम्भिक



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN-978-81-7450-837-9